गुरु हरिगोबिन्द जी

19-6-1595 ई० - 3-3-1644 ई० (48 वर्ष 8 महीने 14 दिन)

6. गुरु हरगोबिन्द

सिक्ख धर्म और हिन्दू धर्म की रक्षा के लिए परमात्मा ने गुरु हरगोबिन्द साहिब को एक जुझारू धर्म गुरु के रूप में इस धरती पर भेजा था । इस संसार में उसी व्यक्ति का अस्तित्व और प्रभाव सुरक्षित रह पाता है जिसके पास शक्ति होती है । शक्ति भी वह, जिसमें धन और जन बल दोनों होते हैं । गुरु हरगोबिन्द में इन दोनों गुणों का संगम था ।

1. जन्म

गुरु हरगोबिन्द का जन्म अमृतसर के एक गांव बडाली में 19.6.1595 ई० को गुरु अर्जन देव की पत्नी गंगा देवी की कोख से हुआ था । उस समय गुरु अर्जन देव बादशाह जहांगीर के मुगल सेनापति सुलही खां से उलझना नहीं चाहते थे । क्योंकि उन्हें मालूम था कि बादशाह ने उनके अपने बड़े भाई पृथ्वीचंद के भड़काने में आकर उन्हें समाप्त करने के लिए सुलही खां को अमृतसर की ओर भेजा था । व्यर्थ के रक्तपात से वे अपने लोगों को बचाना चाहते थे । इसीलिए कुछ समय के लिए वे चुपचाप अमृतसर से निकलकर बड़ाली गांव में जा बसे थे । इसके अतिरिक्त गंगा देवी जब गर्भवती थीं जब उनकी जेठानी, जो पृथ्वीचंद की पत्नी थी, कई तरह के टोने-टोटके करती रहती थी, ताकि गुरु अर्जन देव के यहाँ कोई संतान न हो और वह निपूता ही मर जाए और गुरु गद्दी उन्हें मिल जाए ।

गुरु हरगोबिन्द जी के तीन विवाह हुए । पहला उल्ले ग्राम में नारायणदास की पुत्री सुन्दरजी के साथ । दूसरा अमृतसर निवासी हरिचंद की पुत्री नानकीजी के साथ । तीसरा मंदयाली के दयाराम की पुत्री महादेवीजी के साथ । पहली पत्नी से पुत्र गुरुदित्त और कन्या बीबी वीराजी थे । दूसरी पत्नी से तेग बहादुर और तीसरी पत्नी से तीन पुत्र सूरजमल, हरराम और अटल जी जन्मे । इस प्रकार गुरु हरगोबिन्द जी की तीन पत्नियों से 5 पुत्र और एक कन्या का जन्म हुआ ।

2. बाबा बुड्ढा जी का आशीर्वाद

लेकिन जिस पुत्र का जन्म बाबा बुड्ढा जी की कृपा और आशीर्वाद से

होने वाला था, उसे कौन मार सकता था? गुरु हरगोबिन्द के जन्म से पहले की एक घटना है। पृथ्वीचंद और उसकी पत्नी नहीं चाहते थे कि अर्जन देव की पत्नी गर्भ धारण करे। लेकिन एक दिन स्वयं अर्जन देव ने अपनी पत्नी से कहा—

गंगा! बाबा बुड्डा जी गुरु नानक देव जी के परम शिष्य हैं। वे उनके विचारों के पूर्ण समर्थक और श्रेष्ठ सिक्ख हैं। यदि वे तुम्हें वरदान दे दें तो तुम निश्चित् रूप से गर्भ धारण कर सकती हो। तब गंगा देवी अनेक प्रकार का भोजन तैयार करके अपने कुछ विश्वस्त सिक्खों को साथ लेकर बाबा बुडढा के पास पैदल ही नंगे पैर गई।

बाबा ने रोटी खाते हुए एक प्याज को मुट्ठी मार कर तोड़ा और कहा—

बेटी! जैसे मैंने यह प्याज तोड़ा है, ऐसे ही तुर्कों का सिर तोड़ने वाला एक वीर पुत्र तेरी कोख से जन्म लेगा।

बाबा बुड्ढा जी के इसी आशीर्वाद से बालक हरगोबिन्द का जन्म हुआ था। बालक हरगोबिन्द के जन्म का समाचार पाकर पृथ्वीचंद और उसकी पत्नी को कोई खुशी नहीं हुई। जब अर्जन देव वापस अमृतसर चले आए तो वह बालक को मरवा देने के उपाय करने लगा। एक बार जब बालक हरगोबिन्द बाग़ में खेल रहे थे, तभी पृथ्वीचंद ने एक सपेरे को कुछ रुपए देकर एक जहरीला सांप बाग़ में छुड़वा दिया। लेकिन बालक हरगोबिन्द भी कम नहीं थे। उन्होंने सांप को पकड़ा और घुमाकर दूर फेंक दिया।

एक बार पृथ्वीचंद ने ब्राह्मण रसोइए को 500 रुपए देकर बालक हरगोबिन्द की दही में जहर मिलवा दिया। जब रसोइया वह दही बालक को खिलाने जा रहा था, तब गुरु अर्जन देव ने दही छीन कर कुत्ते को डाल दी। कुत्ता दही खाते ही मर गया। ब्राह्मण रसोइया थर-थर कांपने लगा। लेकिन गुरु अर्जन देव ने उसे चेतावनी देकर छोड़ दिया।

इस प्रकार पृथ्वीचंद बालक हरगोबिन्द को मारने के प्रयत्न करता रहा।

किन्तु वह कभी सफल नहीं हो सका। हर बार उसका भेद खुल जाता। अन्त में एक दिन वह स्वयं ही अपने किए की सजा पा गया। गुरु अर्जन देव की शहादत के बाद एक दिन जब वह लाहौर से वापस अमृतसर लौट रहा था तो रास्ते में अपने एक मित्र के पास उसने रात बिताई। उसी रात्रि अचानक उसके पेट में बड़ा भारी दर्द उठा और उसी दर्द ने उसकी जान ले ली।

3. मालिक मीरी-पीरी के

25.5.1606 ई० को गुरु हरगोबिन्द को रीति के अनुसार गुरु गद्दी पर सुशोभित करते समय बाबा बुड्ढा जी उन्हें गलती से बाएं हाथ की ओर तलवार पहनाने की जगह दाहिनी ओर पहना गए। लेकिन तुरन्त ही उन्हें अपनी गलती का एहसास हो गया तो वे उसे उतारकर बाईं ओर पहनाने के लिए आगे बढ़े। किन्तु गुरु हरगोबिन्द जी ने उन्हें रोककर कहा कि एक दूसरी तलवार बाईं ओर पहना दो। इस प्रकार गुरु हरगोबिन्द जी ने अपने दोनों हाथों की ओर तलवार धारण की। इस तरह एक तलवार मीरी की और एक पीरी की हो गई। तभी उन्हें मीरी पीरी का मालिक कहा जाने लगा।

गुरु हरगोबिन्द साहिब ने गुरु गद्दी पर बैठते ही सिक्ख संगतों को आज्ञापत्र भिजवा दिए कि सभी सिक्ख उत्तम से उत्तम हथियार और घोड़े लेकर अमृतसर पहुँचे। गुरु की आज्ञा पाते ही सभी सिक्ख संगतें, एक से बढ़कर एक घोड़े और अस्त्र-शस्त्र लेकर अमृतसर की ओर उमड़ पड़ीं। उसी समय सिक्ख सेनाएं गठित की गई। गुरु हरगोबिन्द जी के दिल में बादशाह जहांगीर के प्रति गहरा आक्रोश था। जिसने उनके पिताश्री गुरु महाराज अर्जन देव को निर्ममता के साथ मौत के घाट उतार दिया था। इसीलिए उन्होंने सर्वप्रथम सिक्ख धर्म के लिए अपने प्राणों को हँसते-हँसते न्योछावार कर देने वाले 5000 सिक्खों की एक शक्तिशाली घुड़सवार सेना तैयार की।

गुरु हरगोबिन्द जी अपने माता-पिता के एकमात्र पुत्र थे। उन्हें बचपन में जितना लाड़-प्यार मिला था, वहीं उन्हें भरपूर शिक्षा और ज्ञान भी प्राप्त

हुआ था। अपने माता-पिता के प्रति उनकी असीम श्रद्धा थी। बाबा बुड्ढा जी की संस्कार-भक्ति के साथ-साथ निडरता और ओज से सजाया-संवारा था। साहस के वे अद्भुत प्रतीक थे। बादशाह जहांगीर के प्रति उनके दिल में ही नहीं, समस्त सिक्खों के दिलों में भी घृणा और आक्रोश उत्पन्न हो गया था। समस्त मुगल साम्राज्य तथा उससे सहानुभूति रखने वाले हर व्यक्ति के प्रति उनके मन में विद्रोह की भावना जाग्रत हो उठी थी। गुरु अर्जन देव की शहादत ने उनके दिलों में सिक्खों के लिए बलिदान होने की अद्भुत प्रेरणा भर दी थी। उनमें एक अनोखा आत्म-विश्वास पैदा हो गया था।

गुरु अंगद देव ने सिक्खों में अखाड़ों की परम्परा कायम की थी। गुरु हरगोबिन्द जी ने उन सभी अखाड़ों में मल्ल विद्या के साथ-साथ शस्त्र-विद्या सिखाने का भी प्रबन्ध किया। पिता की शहादत ने गुरु हरगोबिन्द को बचपन में प्रौढ़ बना दिया था। वह हर समय बहुत गम्भीर रहते थे। उनके दिल में मुगल शहंशाह जहांगीर से बदला लेने की आग धधकती रहती थी। उन्होंने 5000 घुड़सवार सिक्ख सैनिकों के साथ-साथ, एक बड़ी पैदल सेना भी तैयार की थी।

शहंशाह जहांगीर का दीवान चन्दूशाह, गुरु अर्जन देव के बड़े भाई पृथ्वीचंद का मित्र था। गुरु हरगोबिन्द द्वारा सिक्खों को लड़ाकू कौम के रूप में संगठित करते देख पृथ्वीचंद और दीवान चन्दूशाह ईर्ष्या से जल उठे थे। गुरु अर्जन देव की शहादत के पश्चात् भी उनके हृदय में धधकती ईर्ष्या की अग्नि किंचित् भी कम नहीं हुई थी। पृथ्वीचंद के बड़े बेटे मेहरबान ने दीवान चन्दूशाह को भड़काने में पूरा जोर लगा दिया था। दीवान चन्दूशाह के द्वारा उसने जहांगीर के कान भरे कि सिक्खों के गुरु हरगोबिन्द ने एक शक्तिशाली सेना मुगल सल्तनत का विरोध करने के लिए जमा कर ली है और भारी मात्रा में गोला-बारूद व हथियार भी जमा कर लिए हैं। वह अपने पिता की मौत का बदला लेने के लिए मौका ढूंढ रहा है। उसने फकीरों जैसे कपड़े उतार दिए हैं

और अब राजसी वस्त्र तथा तलवारें धारण करनी आरम्भ कर दी हैं ।

उसने गुरु गद्दी के स्थान पर अकाल तख्त का निर्माण कराया है । वहाँ से वह धार्मिक उपदेश न देकर सिक्खों को शक्तिशाली बनने की प्रेरणा देता है । शायद वह अपना अलग स्वतन्त्र राज्य स्थापित करना चाहता है । दीवान चंदूशाह के कान भरने से मुगल बादशाह जहांगीर का आतंकित हो जाना स्वाभाविक ही था । उसे पूरा-पूरा विश्वास हो गया था कि गुरु हरगोबिन्द उससे अपने पिता की मौत का बदला लेने के लिए ही यह सारी तैयारी कर रहा है । इस बात में कोई संदेह भी नहीं था कि गुरु हरगोबिन्द के दिल में शहंशाह जहांगीर और उनके दीवान चन्दूशाह के प्रति बेहद क्रोध था । अन्दर ही अन्दर उनकी आत्मा उन्हें धिक्कार रही थी । वे किसी भी कीमत पर जहांगीर को नीचा दिखाना चाहते थे । उधर मन ही मन जहांगीर भी सिक्ख सेना के समाचार से भयभीत हो उठा था । वह भी मौके की तलाश में था कि कब गुरु हरगोबिन्द पर अपना जाल फेंके और उन्हें काबू में करे, लेकिन उसे मौका नहीं मिल रहा था ।

जहांगीर ने अपने एक विशेष अधिकारी वजीर खां को बुलाया और उससे कहा कि वह अमृतसर जाए और गुरु हरगोबिन्द को बुलाकर लाए । अगर वह राजी से न आए तो उसे जबरन पकड़कर ले आए । बजीर खां गुरु अर्जन देव का शिष्य था और उनकी बहुत इज़्ज़त करता था । वह धर्म संकट में पड़ गया कि गुरु पुत्र को कैसे गिरफ्तार करके बादशाह के पास ले जाए । वजीर खां गुरु हरगोबिन्द के सामने अकेला ही पहुँचा और उसने बादशाह की आज्ञा और अपना धर्म संकट उनके सामने रखा । गुरु हरगोबिन्द वजीर खां के धर्म संकट को तत्काल ताड़ गए । उन्हें जरा भी भय नहीं लगा । वे अपने खास-खास सेवादारों के साथ जहांगीर से मिलने दिल्ली चलने के लिए तैयार हो गए । दिल्ली पहुँचकर गुरु हरगोबिन्द 'मजनू का टीला' नामक स्थान पर ठहर गए । दूसरे दिन जहांगीर के बुलाने पर वे दरबार में पहुँचे । जहांगीर ने

गुरु हरगोबिन्द को बैठने के लिए उचित आसन दिया और उनका राजकीय सत्कार किया। जहांगीर की यह कूट चाल थी, जिसमें वह गुरु हरगोबिन्द को फंसाना चाहता था। गुरु हरगोबिन्द उसके इस व्यवहार को अच्छी तरह समझ रहे थे। जहांगीर ने उन पर जो आरोप लगाए उनका गुरु हरगोबिन्द ने निर्भयता के साथ खण्डन किया।

गुरु हरगोबिन्द की स्पष्टवादिता से खुश होकर जहांगीर ने अपने सभी आरोपों को वापस ले लिया। लेकिन तभी दीवान चन्दूशाह ने बादशाह जहांगीर को भड़काया कि ये झूठ बोल रहे हैं। इनकी सारी सशस्त्र तैयारियां और सिक्खों की भारी फौज मुगल सल्तनत से टकराने के लिए ही है। वर्ना एक धार्मिक गुरु होने के नाते इस तरह की सशस्त्र तैयारियों की क्या आवश्यकता है? दीवान चन्दूशाह की दलीलों का समर्थन अन्य मुसलमान दरबारियों ने भी किया। उन सबकी बातें सुनकर जहांगीर ने गुरु हरगोबिन्द को ग्वालियर भेजकर वहाँ के किले में क़ैद कर देने की आज्ञा सुना दी।

गुरु हरगोबिन्द जानते थे कि उनके साथ ऐसा हो सकता है। उन्होंने अपने साथ आए सिक्खों को वापस अमृतसर भेज दिया और खुद ग्वालियर चले गए। वहाँ उन्हें उन क़ैदियों के साथ बंद कर दिया जो कि शहजादा खुसरो के साथ विद्रोह में शामिल थे। जो सिक्ख वापस अमृतसर गए थे, उनसे गुरु हरगोबिन्द ने पहले ही कह दिया था कि वहाँ जाकर वे कोई ऐसा काम न करें, जिससे सिक्खों की बदनामी हो। वे शान्त रहें और अवसर का इन्तजार करें।

4. सूफी की वजह से रिहाई

ग्वालियर के क़ैदखाने के बारे में यह चर्चा आम थी कि एक बार जो कैदी उस कैदखाने में डाला जाता है, उसकी लाश ही बाहर आती है। इस बात से सारे सिक्ख बड़े बेचैन हो गए। उन्हें अपने गुरु को मुक्त कराने का कोई रास्ता नजर नहीं आ रहा था। तब बाबा बुड्ढा जी ने गुरु माता गंगा देवी से कहा—

बेटी! लाहौर के सूफी संत मियां मीर का बहुत प्रभाव है बादशाह जहांगीर भी उनकी बात नहीं टाल सकता। वे गुरु अर्जन देव के बड़े अच्छे मित्र भी हैं।

गुरु अर्जन देव ने हरिमन्दिर की पहली ईंट उन्हीं से रखवाई थी । इस बात को सारी सिक्ख संगत जानती है । अगर संत मिया मीर बादशाह को जाकर सही बात बताएं तो बादशाह गुरु हरगोबिन्द जी को जरूर छोड़ देगा ।

गुरु माता गंगा देवी यह भी जानती थी कि सन्त मियां मीर का रुतबा सिक्खों में भी बहुत है । वे उनका बहुत आदर करते हैं । साईं मियां मीर जरूर दीवान चन्दूशाह की बेजा हरकतों से परिचित होंगे । उन्होंने कुछ सोचकर यह उत्तरदायित्व बाबा बुड्ढा पर ही सौंपा । उन्होंने बाबा से कहा—

बाबा जी! आप हमारे बड़े हैं । आप साईं मियां मीर से बात करने लाहौर जाइए । कहीं ऐसा न हो कि वक्त हाथ से निकल जाए और दुष्ट जहांगीर मेरे पति की भाँति मेरे पुत्र हरगोबिन्द को भी मरवा दे ।

''तुम चिन्ता मत करो बेटी!'' बाबा बुड्ढा जी ने उन्हें आश्वासन दिया—''होगा वही तो निरंकार चाहेगा । मैं आज ही लाहौर चला जाता हूँ ।''

बाबा बुड्ढा जी चन्द सेवादारों को लेकर उसी समय लाहौर चले गए । वहाँ साई मियां मीर को प्रणाम करके उन्होंने दीवान चन्दूशाह की बेजा चालों के बारे में उन्हें बताया और गुरु हरगोबिन्द की सलामती के लिए बादशाह जहांगीर से बात करने को कहा ।

साईं मियां मीर उसी दिन दिल्ली चले गए और बादशाह जहांगीर से उन्होंने अकेले में मुलाक़ात की । उन्होंने बादशाह जहांगीर के मन से यह बहम निकाला कि सिक्ख सेना मुगल सल्तनत के प्रति बग़ावत करने के लिए तैयार की जा रही है । उन्होंने दीवान चन्दूशाह की शत्रुता का कारण और उसकी हरकतों की जानकारी बादशाह को दी । साईं मियां मीर की बातों से जहांगीर का दिल साफ हो गया । उसने यह भी अच्छी तरह समझ लिया कि 15 वर्ष का लड़का उसके लिए भला क्या विपत्ति खड़ी कर सकता हैं वह खामख्वाह में ही उस लड़के से भयभीत हो रहा है । जहांगीर ने साईं मिया मीर के सामने ही गुरु हरगोबिन्द की रिहाई का हुक्म जारी कर दिया । गुरु हरगोबिन्द को अपनी रिहाई का समाचार मिला तो उन्होंने अकेले वहाँ से रिहा होने से इन्कार कर

दिया। उन्होंने कहा कि उनके साथ कैदखाने में जितने भी कैदी हैं उन सभी को उनके साथ रिहा किया जाए। तभी वे कैदखाने से बाहर निकलेंगे।

गुरु हरगोबिन्द का हठ देखकर बादशाह जहांगीर ने खुसरों के साथ बग़ावत में भाग लेने वाले सभी लोगों को माफ कर दिया और उनकी रिहाई का हुक्म भी जारी कर दिया। ग्वालियर के जिस कैदखाने में गुरु हरगोबिन्द को कैद किया गया था वहाँ आज एक भव्य गुरुद्वारा है। जो कैदी गुरु हरगोबिन्द के साथ रिहा हुए थे, उन्होंने 'बन्दी छोड़ पीर' के नाम से गुरु हरगोबिन्द की जय-जयकार की थी। जहांगीर ने वजीर खां को गुरु हरगोबिन्द की रिहाई का हुक्मनामा पकड़ाकर हिदायत की थी कि वह उन्हें अपने साथ दिल्ली ले आए। उसे यह डर था कि गुरु हरगोबिन्द अगर अमृतसर पहुँच गए तो सिक्ख कौम कहीं विद्रोह न कर दे।

इसलिए जहांगीर ने नीति से काम लिया और जब गुरु हरगोबिन्द दिल्ली पहुँचे तो उसने उनके साथ एक मित्र जैसा व्यवहार किया। वह हर समय गुरु हरगोबिन्द को अपने साथ अपनी नजरों के सामने ही रखता था। उनकी हर सुख-सुविधा का ध्यान करने का उसने हुक्म जारी कर दिया था।

जब गुरु हरगोबिन्द को दिल्ली में रहते हुए काफी समय बीत गया तो उन्हें अनुभव होने लगा कि बादशाह ने एक तरह से उन्हें अपने पास नजरबंद करके रखा हुआ है। वे उसकी चाल को अच्छी तरह समझ रहे थे। इसलिए उन्होंने भी नीति से काम लेने का विचार किया और एक दिन बादशाह को खुश देखकर उन्होंने उससे अमृतसर जाने की आज्ञा मांगी। इस पर जहांगीर ने कहा कि वह कश्मीर जा रहा है। वे भी उसके साथ कश्मीर चलें। वहाँ से लौटकर वे अमृतसर चले जाएं। वस्तुतः वह मन ही मन बड़ा भयभीत हो रहा था कि गुरु हरगोबिन्द के यहाँ से जाने के बाद सिक्ख लड़ाके उसके विरुद्ध विद्रोह कर देंगे। जहांगीर ने गुरु हरगोबिन्द को 1000 सशस्त्र सैनिक तथा तोपें रखने का लालच भी देना चाहा। लेकिन गुरु हरगोबिन्द ने इन्कार करते हुए कहा—

शहंशाह! हम किसी का दिया हुआ अधिकार नहीं लेते। हमें तो जो ईश्वर देता है, उसे ही ग्रहण करते हैं और उसी के आदेश के अनुसार ही हम चलते हैं।

इसके बाद जहांगीर उन्हें साथ लेकर गोयंदवाल पहुँचा। वहाँ एक बार फिर गुरु हरगोबिन्द ने उससे अमृतसर जाने की बात कही। इस पर जहांगीर बोला–

चलिए, हम भी आपके साथ अमृतसर चलते हैं। हरिमन्दिर के दर्शन करके ही हम लाहौर जाएंगे।

गुरु हरगोबिन्द तो यह चाहते ही थे। वे जानते थे कि एक बार वे अमृतसर पहुँच जाएं, फिर उन्हें कोई वहाँ से नहीं ले जा सकेगा। वे सहर्ष जहांगीर को लेकर अमृतसर पहुँचे। अमृतसर के निकट गुमटाले में जहांगीर ने अपनी सेना का पड़ाव डाला और स्वयं गुरु हरगोबिन्द जी के साथ अमृतसर चला आया। वहाँ गुरु हरगोबिन्द और जहांगीर का भव्य स्वागत किया गया। जहांगीर अपने स्वागत सत्कार से बहुत खुश हो गया। उसने हरिमन्दिर में अरदास की और माथा टेका।

जहांगीर कुछ दिन वहाँ रुका। फिर वजीर खां के साथ वहाँ थोड़ी सी सेना छोड़कर लाहौर चला गया। जाते समय वह वजीर खां को समझाकर गया कि जैसे भी बने वह गुरु हरगोबिन्द को लाहौर ले आए। गुरु हरगोबिन्द उस वक्त जहांगीर को नाराज करना नहीं चाहते थे। कुछ दिन अमृतसर में निवास करने के बाद वे अपने चन्द खास सिक्ख सेवादारों को लेकर लाहौर चले गये। जहांगीर ने बड़े प्रेम से गुरु हरगोबिन्द का स्वागत किया। उसके दिल से अब तक सिक्ख सेना का डर बहुत कुछ कम हो गया था। उसने अनुभव किया कि दीवान चन्दूशाह ने खामख्वाह गुरु हरगोबिन्द की ओर से उसे भड़काया है। उसे अब गुरु अर्जन देव की शहादत का भी दुःख होने लगा था।

दिल्ली में ही दीवान चन्दूशाह को वे गुरु हरगोबिन्द के हवाले कर चुके थे। वे उसे क्षमा कर देना चाहते थे। किन्तु अमृतसर की सिक्ख संगत इसके

लिए तैयार नहीं थी। उन्होंने चन्दूशाह की जमकर पिटाई की थी। गुरु हरगोबिन्द उसे अपने साथ लाहौर ले आए थे। लाहौर में दीवान चन्दूशाह पागल जैसा हो गया था। क्रोध, ईर्ष्या और अपमान की भट्ठी में सुलगता हुआ वह विक्षिप्त सा हो उठा था। सिक्ख क्रोध से भरकर उसे अपमानित करते हुए उसे भड़भूजे के पास लाए जिससे दीवान चन्दूशाह ने गुरु अर्जन देव पर गर्म रेत डलवाई थी। भड़भूजा गुरु अर्जन देव की शहादत से और जबरन उसके द्वारा कराए गए उस कृत्य से बहुत दुःखी था। दीवान चन्दूशाह को देखकर वह क्रोध में भर उठा। उसने इतने क्रोध में दीवान चन्दूशाह की गर्दन पर कड़छा मारा कि उसकी गर्दन कट गई और उसका सिर धड़ से एक ओर जा पड़ा। उसे उसी हालत में छोड़कर सिक्ख संगत वापस लौट आई।

बादशाह जहांगीर को उसके अन्त का पता चला तो उसने गुरु हरगोबिन्द से कहा—"गुरु जी! अब तो आपके मन को शान्ति मिल जानी चाहिए। उस चुगलखोर के कारण ही मुझसे इतना भारी पाप हो गया था।"

गुरु हरगोबिन्द ने शहंशाह से कहा—"आप ऐसा क्यों सोचते हैं शहंशाह। अकाल पुरुष की ऐसी ही मर्जी थी।" बादशाह ने हरगोबिन्द से निवेदन किया—"गुरु जी! मैं कश्मीर जा रहा हूँ। तब तक आप यहीं लाहौर में ही रहें। मेरा शहजादा आपकी देखभाल करेगा। जब में कश्मीर से लौटकर आऊँगा तब आप अमृतसर जाइए।"

बादशाह की बात मानकर गुरु हरगोबिन्द को लाहौर में रुकना पड़ा। लेकिन उनके विरोधी अभी भी कम नहीं थे। जब चन्दूशाह के बेटे करमचन्द को अपने बाप की मौत का पता चला ता उसके सीने में बदले और ईर्ष्या की आग धधक उठी। उसने गुरु हरगोबिन्द से बदला लेने का संकल्प कर लिया। उसने यवन सेना का सहारा लिया।

5. समय की परख

इधर गुरु हरगोबिन्द ने भी सोचा कि अब समय आ गया है जब अपने धर्म की रक्षा के लिए तलवार उठानी ही पड़ेगी। लेकिन जहांगीर युद्ध को टालना चाहता था कि गुरु हरगोबिन्द के हाथों में इस समय सारा पंजाब है।

पंजाब के जांबाज बहादुरों के साथ लोहा लेना आसान नहीं है । वह लाहौर पहुँचकर गुरु हरगोबिन्द से समझौता करना चाहता था । लेकिन लौटते समय ही मार्ग में उसका निधन हो गया । जहांगीर के बाद उसका बेटा शाहजहां दिल्ली की गद्दी पर बैठा । वह अपने पिता की तरह कट्टर नहीं था । उसने अपने तरीके से मुगलिया सल्तनत का शासन किया । वह शान्तिप्रिय बादशाह था ।

शाहजहां की ताजपोशी में दूर-दूर से राजे व रजवाड़ों के राज्याध्यक्षों को बुलवाया गया था । गुरु हरगोबिन्द के पास एक विशेषदूत निमन्त्रण लेकर आया था । गुरु हरगोबिन्द शाहजहां की ताजपोशी में शामिल होने दिल्ली गए । शाहजहां गुरुजी के तेज से बड़ा प्रभावित हुआ । उसने गुरु जी से ताजपोशी के पश्चात् अपने साथ रुकने की प्रार्थना की तो गुरु जी ने सहर्ष स्वीकार कर लिया । शाहजहां एक दिन गुरु जी को अपने साथ जंगल में शिकार के लिए ले गया । उस जंगल में एक भयानक शेरनी ने बादशाह पर सीधा आक्रमण कर दिया । बादशाह के किसी सैनिक या कर्मचारी की हिम्मत नहीं हुई कि वह उस शेरनी के आक्रमण से बादशाह को बचाए । तब गुरु हरगोबिन्द ने उछलकर तलवार का एक भरपूर वार शेरनी पर किया और उसके दो टुकड़े कर दिए । अपनी जान बचाने के एवज में शाहजहां ने गुरु जी को गले लगा लिया । लेकिन महल में लौटने पर बादशाह के मुंह लगे कर्मचारियों ने बादशाह के कान भर दिये कि आपने यदि गुरु हरगोबिन्द को काबू में न किया तो उनके पास ऐसे-ऐसे योद्धा हैं जो कभी भी आपकी सत्ता के लिए विपत्ति बन सकते हैं ।

उस समय शाहजहां नौजवान था । वह उनके बहकावे में आ गया और उसने गुरु जी को क़ैद करने की बात सोचनी शुरू कर दी । लेकिन उस वक्त वह ऐसा नहीं कर सका । गुरु हरगोबिन्द बादशाह से विदा लेकर अमृतसर लौट आए । लेकिन जो होना था वह होकर रहता है । बादशाह को बताए बिना दीवान चन्दूशाह के बेटे करमचन्द ने लाहौर के मुगल सैनिकों को गुरु जी के विरुद्ध भड़का दिया और बदला लेने की गर्ज से सन् 1630 में, मुगल

सैनिकों ने गुरु हरगोबिन्द पर आक्रमण कर दिया। गुरु हरगोबिन्द ने अपने जांबाज बहादुर सिक्ख सैनिकों के साथ श्री हरगोबिन्द पुर में यवनों से मुकाबला किया। करमचन्द उन यवन सैनिकों के साथ था। वहाँ लड़ाई करते हुए वह गुरु हरगोबिन्द के हाथों मारा गया।

6. जांबाजी को सरअंजाम

कुछ दिनों बाद शाहजहां लाहौर आया। उसकी सेना के कुछ अधिकारी जंगल में शिकार के लिए गए थे। उसी जंगल में गुरु हरगोबिन्द भी अपने सेना नायकों के साथ शिकार खेलने गए थे। अचानक शाहजहां के सैनिक अधिकारियों का एक सफेद रंग का शिकारी बाज एक पक्षी का पीछा करते हुए गुरु हरगोबिन्द के दल में आ गया। वहाँ उसे पकड़ लिया गया। शाहजहां के शिकारी बाज को खोजते हुए गुरु गोबिन्द के सामने पहुँच गए और अपना बाज मांगने लगे। लेकिन गुरु हरगोबिन्द के शिकारियों ने बाज देने से इन्कार कर दिया। इस छोटी सी बात पर ही बात बढ़ गई। शाहजहां के अधिकारियों ने बादशाह से जाकर शिकायत की। इस पर शाहजहां को क्रोध आ गया–"शाही बाज को छीनने की उनकी इतनी हिम्मत? सेनापति मुखलिस खां!" "हुक्म आलम पनाह! "सेनापति मुखलिस खां ने बादशाह के सामने सिर झुकाया। बादशाह ने हुक्म दिया–"जाओ हरगोबिन्द से हमारा बाज लेकर आओ। अगर वह न दे तो वहाँ मार-काट मचा देना। बाज हमें हर हाल में चाहिए।"

बादशाह का हुक्म पाकर सेनापति मुखलिस खां 7000 सैनिक लेकर गुरु हरगोबिन्द से बाज लेने चल दिया। गुरु हरगोबिन्द को पता चला तो उन्होंने रातों रात लोहगढ़ किले का निर्माण कराया और मुगल सेना के आने पर उससे जबरदस्त टक्कर ली। घमासान युद्ध हुआ। इस युद्ध में हजारों सैनिक मारे गए। स्वयं मुखलिस खां गुरु हरगोबिन्द के हाथों मारा गया। उसके मरते ही यवन सेना लाहौर की ओर भाग खड़ी हुई। इस युद्ध स्थल पर आज भी उस युद्ध की याद में गुरुद्वारा संग्राणा साहिब स्थित है।

मुगल सेना की करारी हार के समाचार ने शाहजहां के क्रोध को और भी भड़का दिया। उसके क्रोध से बचने के लिए गुरु हरगाबिन्द ने अपने

परिवार को सुरक्षा की दृष्टि से गोयंदवाल भेज दिया और स्वयं जालन्धर जिले के करतारपुर में आ गए। करतारपुर के पास ही सहेला गांव था। यहाँ की जागीर पहले चन्दूशाह के नाम थी। किन्तु बाद में जहांगीर ने यह जागीर गुरु हरगोबिन्द के नाम कर दी थी। सहेला गांव का चौधरी भगवान दास चन्दूशाह का विशेष व्यक्ति था। गुरु हरगोबिन्द जब अपनी सेना के साथ वहाँ पहुँचे तो उसने उन्हें वहाँ से जाने के लिए कहा। गुरु हरगोबिन्द ने उसे समझाने की कोशिश की कि यह गांव अब उनकी जागीर है। उन्हें यहाँ से जाने के लिए कहने का उसे कोई अधिकार नहीं है। इस बात पर ही तकरार बढ़ गई। दोनों ओर के लोगों ने तलवारें निकाल लीं। इस संघर्ष में भगवान दास मारा गया।

अपने पिता की मृत्यु का बदला लेने के लिए चौधरी भगवान दास के पुत्र रतनचन्द्र ने जालंधर के हाकिम अब्दुल्ला खां से शिकायत की और गुरु हरगोबिन्द के विरुद्ध उसे भड़काया। सन् 1630 में सिक्ख सेना का अब्दुल्ला खां से घमासान युद्ध हुआ। इस युद्ध में अब्दुल्ला खां के 10000 सैनिकों में से आधे से ज्यादा मारे गये। अब्दुल्ला खां भी उनमें से एक था। भगवान दास का बेटा रतनचन्द्र भी इस युद्ध में मारा गया था। बाद में गुरु हरगोबिन्द ने सहेला गांव का नाम बदलकर हरगोबिन्दपुर रख दिया।

गुरु हरगोबिन्द से लड़ाई के समाचारों ने शाहजहां को सोचने पर मजबूर कर दिया। उसे लगने लगा कि सिक्ख सैनिक बड़े जुझारू हैं। उनसे शत्रुता रखना कोई समझदारी की बात नहीं है। फिर भी सन् 1631 ई० में शाहजहां ने सेनापति बेग लाला के साथ 35000 सैनिकों की एक विशाल सेना करके गुरु हरगोबिन्द के पास उन्हें सबक सिखाने भेजा, जिससे सदा के लिए यह क्रोध और शत्रुता समाप्त हो जाए। मुगल सेना के आने का समाचार पाकर गुरु हरगोबिन्द ने अपनी सेना के कुल 3000 जुझारू सैनिकों को लेकर नियाने गांव में मुगल सेना से टक्कर लेने के लिए मोर्चा जमा लिया। मुगल सेना ने गांव को घेरकर जबरदस्त आक्रमण किया। लेकिन सिक्ख सैनिकों ने मुगल सेना को गाजर-मूली की तरह काट डाला। यह युद्ध कुल 18 घंटे ही चल पाया। इसमें मुगल सेनापति बेगलाला के मारे जाते ही शेष सेना सिर पर पैर रखकर भाग खड़ी हुई।

इसी तरह सन् 1634 ई० में, गुरु हरगोबिन्द जी का एक आश्रित पठान पैंदे खां अपनी बहन और बहनोई के बहकावे में आकर गुरुजी का शत्रु

बन बैठा। हालांकि वह बरसों से गुरुजी के पास रह रहा था। लेकिन मुसलमान होने का एहसास वह भूला नहीं था। वह गुरुजी से झगड़ा करके शाहजहां के पास दिल्ली पहुँचा और गुरुजी के खिलाफ बादशाह को खूब नमक-मिर्च लगाकर भड़काया। शाहजहां तो पहले से ही गुरु हरगोबिन्द जी की बढ़ती हुई शक्ति से जला-फूंका बैठा था। उसने काले खां के नेतृत्व में 25000 सैनिकों की एक सेना पठान पैंदे खां के साथ कर दी और इस प्रकार वह एहसान फरामोश पठान गुरु जी से युद्ध करने की इच्छा से अमृतसर की ओर चल दिया।

गुरु हरगोबिन्द उन दिनों करतारपुर में थे। एक रात चुपके से काले खां की सेना ने करतारपुर को घेर लिया। किन्तु गुरु जी के जांबाज सिक्ख सैनिक भी कम नहीं थे। उन्होंने काले खां की सेना की घेराबंदी तोड़ दी। भयानक युद्ध हुआ। उस युद्ध में काले खां, पठान पैदे खां और अधिकांश मुगल सेना खेत रही। मुगल सेना को पराजित करके गुरु हरगोबिन्द करतारपुर छोड़कर कीरतपुर आ गए और वहाँ रहने लगे। इस तरह गुरु जी का अधिकांश समय मुगल सेना से टक्कर लेने में ही व्यतीत हुआ। उन्हें कीरतपुर आने के बाद लगने लगा था कि उनका अंतिम समय निकट आ गया है। मृत्यु से आँख-मिचौली का खेल वे अब अधिक नहीं खेल सकेंगे। उन्होंने अपने सारे परिवार को भी वहीं अपने पास बुला लिया। सिक्ख संगत के सम्मुख एक दिन अपने बड़े भाई गुरदित्ता के पुत्र हरिराय को उन्होंने अपनी गुरु गद्दी सौंप दी। क्योंकि उसी में उन्हें गुरु बनने के गुण दिखाई दे रहे थे। 3.3.1644 ई० को गुरु हरगोबिन्द जी कीरतपुर रोपड़ में ज्योतिजोत समा गए। गुरु हरगोबिन्द ने सिक्ख कौम को जुझारू बनाने का एक ऐसा महामंत्र दिया था, जो आज भी सर्वत्र देखा जा सकता है। वे जात-पात में विश्वास नहीं करते थे। उनकी नजर में हिन्दू और मुसलमान एक निरंकार की ही सन्तान थे। वे सभी को एक ही दृष्टि से देखते थे। इसीलिए उनके समर्थकों में मुसलमानों की संख्या भी कम नहीं थी। वे सभी उनके उपदेश बड़ी श्रद्धा के साथ सुना करते थे और सबके साथ बैठ कर लंगर का प्रसाद ग्रहण करते थे।

गुरु हरिराय जी

16-1-1630 ई० - 6-10-1661 ई० (31 वर्ष 8 महीने 20 दिन)

7. गुरु हरिराय

गुरु हरिराय बचपन से ही दयावान और शान्तिप्रिय धर्म गुरु थे। उनका हृदय सदैव करुण रस से भरा रहता था। दीन-दुःखियों की सेवा करना और लंगर की स्वच्छता पर उनका बड़ा ध्यान रहता था। गुरु हरिराय का जन्म 16.1.1630 ई० को कीरतपुर (रोपड़) में गुरु हरगोबिन्द के बड़े पुत्र गुरुदित्ता की पत्नी निहाल कौर के गर्भ से हुआ था। सिक्ख धर्म में गुरु नानक ने अपने सन्देश में कहा था कि प्रभुता पाने के पश्चात् अहंकार नहीं करना चाहिए। गुरु हरगोबिन्द ने अपने प्रयासों से विशाल और अकूत धन एकत्र किया था और मुगल बादशाह शाहजहां की सेना को पांच-पांच बार युद्ध में हराया। लेकिन अपनी इस प्रभुता का उन्हें कभी अभिमान नहीं रहा। यही बात उनके पौत्र गुरु हरिराय में भी थी। गुरु हरगोबिन्द ने अपने पुत्रों को गुरु गद्दी न सौंपकर अपने पौत्र को गुरु गद्दी दी थी। उसके अनेक कारण थे। अपने से पूर्व गुरुओं की परम्परा को ध्यान में रखते हुए उन्होंने योग्य व्यक्ति को ही गुरु गद्दी सौंपी थी।

इसके अतिरिक्त गुरु हरगोबिन्द के बड़े पुत्र बाबा गुरुदित्ता तो पहले ही स्वर्गवासी हो चुका था। उनके दूसरे पुत्र अणीराय में गुरु गद्दी की जरा भी योग्यता नहीं थी, तीसरे तेग बहादुर साधना में लगे हुए थे, बाबा अटल छोटी आयु में ही परलोक सिधार गए थे और सूरजमल गुरु घर के दोषी बन गए थे। अतः गुरु हरगोबिन्द ने अपने पौत्र हरिराय को 8.3.1644 ई० को जबकि उसकी उम्र मात्र 15 वर्ष की ही थी, गुरु गद्दी सौंप दी थी। गुरु हरिराय का विवाह उत्तर प्रदेश के बुलन्दशहर जिले के अनूपशहर निवासी भाई दयाराम की पुत्री कृष्ण कौर के साथ हुआ था। समय के साथ ही वे दो पुत्रों के पिता बने। उनका पहला पुत्र रामराय था और दूसरा पुत्र हरिकृष्ण था।

गुरु हरिराय को गुरु गद्दी को विरासत में मुगल साम्राज्य की शत्रुता प्राप्त हुई थी। मुगल शासक सिक्खों को अपने लिए सबसे बड़ा खतरा समझते थे। क्योंकि गुरु हरगोबिन्द से टकराने के बाद उन्हें हर बार पराजय का मुख देखना पड़ा था। उस वक्त हारी हुई सेना के हथियाए गए अस्त्र-शस्त्रों से सिक्ख सेना की शक्ति बहुत बढ़ गई थी। इतना होने पर भी गुरु हरिराय लड़ाई-झगड़े के विरोधी थे। लेकिन वे कायर भी नहीं थे। अवसर आने पर मुगल सेना से वे उसी भाँति टक्कर लेने में समर्थ थे, वे

मुगलों की हर चालाकी और धूर्तता से परिचित थे। वे सत्य के उपासक थे और झूठ से उन्हें बहुत घृणा थी।

गुरु हरिराय को गुरु गद्दी पर बैठे हुए अभी कुछ ही समय व्यतीत हुआ था कि मुगल सम्राट शाहजहां बीमार पड़ गया। उसके बीमार पड़ते ही उसके चारों शहजादे – औरंगजेब, दारा शिकोह, शुजा और मुराद राजगद्दी के लिए लड़ने लगे। इन चारों में औरंगजेब ज्यादा चालाक था। शहंशाह शाहजहां ने अपना अन्तिम समय देखकर दारा शिकोह को अपना उत्तराधिकारी घोषित कर दिया था। इस बात से औरंगजेब ईर्ष्या से जल उठा था। उसने शुजा और मुराद को अपनी ओर मिला लिया और बादशाह की सेना के साथ विद्रोह कर दिया।

तीनों भाइयों की सम्मिलित सेना के सम्मुख शहजादे दारा शिकोह की सेना टिक न सकी। दारा शिकोह अपने बीमार बाप को पीछे छोड़कर काबुल की ओर भाग गया। उसके जाते ही औरंगजेब ने अपने को दिल्ली की गद्दी का बादशाह घोषित कर दिया और अपने बीमार पिता को क़ैदखाने में डाल दिया। दारा शिकोह को समाचार मिला तो वह बहुत दुःखी हुआ। उससे भी ज्यादा दुःख उसे तब हुआ जब उसे पता चला कि औरंगजेब ने उसका साथ देने वाले अपने दोनों भाइयों शुजा और मुराद का भी क़त्ल करा दिया है। उसकी क्रूरता देखकर हिन्दुस्तान का सारा निजाम थर्रा उठा।

धर्म रक्षा राजसत्ता नहीं

दारा शिकोह अपनी जान की खैर मनाता हुआ काबुल की ओर भाग जा रहा था। शाही सेना का एक खास ओहदेदार कुछ सेना को अपने साथ लेकर उसका पीछा कर रहा था। रास्ते में वह गुरु हरिराय के पास पहुँचा और उनसे सहायता मांगी। किन्तु गुरु हरिराय ने उसका आदर-सत्कार तो खूब किया, परन्तु उसकी सहायता करने से इन्कार कर दिया। उन्होंने साफ-साफ कहा कि वे राजनीतिक कारणों से गुरु सैनिकों को युद्ध भूमि में कटने के लिए नहीं भेज सकते। हमारे सैनिक धर्म रक्षा के लिए हैं, किसी को राज सत्ता प्राप्त कराने के लिए नहीं।

दारा शिकोह गुरु हरिराय के उत्तर से निराश हो गया और काबुल की ओर चल पड़ा। लेकिन अपनी शरण में आए शहजादे दारा शिकोह के लिए इतना अवश्य किया कि मुगल सेना के दस्ते को रोकने के लिए अपनी धर्म सेना के कुछ जुझारू सैनिकों का एक दस्ता व्यास नदी की ओर भेज दिया,

ताकि मुगल दस्ते को व्यास के पार ही रोका जा सके। उनका उद्देश्य शाही फौजी दस्ते से युद्ध करना नहीं था, उसे कुछ समय तक वहाँ रोके रखना था। इसमें वे सफल भी हुए। औरंगजेब को जब इस बात का पता चला तो उसके मन में गुरु हरिराय के प्रति गहरे विरोध का भाव पनपने लगा। किन्तु वह अभी नया-नया राजगद्दी पर बैठा था। इसलिए उस समय उसने चुप रहना ही उचित समझा।

कुछ दिन बाद औरंगजेब ने गुरु हरिराय के नाम बड़ी चालाकी से एक विनम्रता भरा पत्र लिखवाकर भिजवाया। उस पत्र के द्वारा औरंगजेब ने गुरु हरिराय को दिल्ली बुलाने का निमंत्रण भेजा था। वह सोच रहा था कि एक बार गुरु हरिराय पंजाब से निकलकर दिल्ली आ जाएं तो वह उन्हें गिरफ्तार करके या तो जेल में डाल देगा या फिर उन्हें अपने भाइयों की भाँति क़त्ल करा देगा। लेकिन गुरु हरिराय भी इन मुगल बादशाहों की धूर्तता से अच्छी तरह परिचित थे। उनके सामने गुरु अर्जन देव और हरगोबिन्द का उदाहरण था। गुरु हरगोबिन्द ने तो पांच-पांच युद्धों में जिस प्रकार मुगलिया सेना को पराजित किया था, उससे मुगल बादशाह वैसे तो सिक्खों की गुरु गद्दी से चिड़े हुए थे। वे उन्हें अपना घोर शत्रु मानते थे। इसीलिए गुरु हरिराय ने विनम्रता के साथ औरंगजेब का निमंत्रण ठुकरा दिया। किन्तु वे बादशाह को नाराज भी करना नहीं चाहते थे। इसलिए उन्होंने अपने बड़े पुत्र रामराय को दिल्ली भेज दिया।

अपने पुत्र रामराय को दिल्ली भेजते समय उन्होंने उसे दो बातों को ध्यान में रखने का विशेष निर्देश दिया। पहली तो यह कि वह वहाँ जाकर कोई ऐसा काम न करे जिससे गुरु गद्दी का अपमान हो। दूसरे, औरंगजेब कितनी ही चिकनी-चुपड़ी बातें करें, प्रलोभन आदि दे, उसकी बातों में आकार उसे स्वीकार मत करना।

चापलूसी की सज़ा

लेकिन औरंगजेब भी कम चालाक और धूर्त नहीं था। वह पक्का कूटनीतिज्ञ था। उसने रामराय का शाही स्वागत किया। सिक्खों की बहादुरी और सिक्ख गुरुओं की दयानतदारी की उसने इतनी तारीफें की कि बेचारा रामराय उनकी बातों में आ गया। उसने अपनी ओर से औरंगजेब के आदर-सत्कार का बड़ी शिद्दत के साथ उत्तर दिया और गुरु गद्दी की खूब बड़ाई की तथा कितनी ही बातें अपनी ओर से गढ़ कर अपने झूठे अहंकार का प्रदर्शन किया।

एक दिन औरंगजेब ने रामराय से पूछा–''रामराय! हमने सुना है कि आपके गुरुग्रंथसाहिब में गुरु नानक देव जी का एक शब्द शामिल है, जिसमें कहा गया है–

मिट्टी मुसलमान की पेड़े पई घुमिआर।

घड़े भांडे इटां कियां जलदी करे पुकार।।

जल-जल रोवै बपुड़ी, झड़-झड़ पवै अंगिआर।

नानक जिन करते किया सो जाणै करतार।।

क्या यह बात सच है? इस तरह की बात कहकर क्या उन्होंने मुसलमानों की मिट्टी खराब करने की कोशिश नहीं की है।

औरंगजेब की बात सुनकर रामराय का साहस सच बोलने का नहीं हुआ। वह तो बादशाह की खुशामद और चापलूसी करने में लगा था। उसने कहा–''बादशाह सलामत! ऐसी बात नहीं है। गुरुग्रंथसाहिब में तो लिखा है–

मिट्टी बेइमान की पेड़े पई घुमिआर।

किसी ने बेईमान शब्द को बदलकर मुसलमान कर दिया है, जो ठीक नहीं है।

रामराय की बात सुनकर औरंगजेब मुस्कराकर रह गया। उधर जब गुरु हरिराय को रामराय की इस बात का पता चला तो उन्हें बहुत दुःख पहुँचा। उन्हें लगा कि रामराय ने सच न बोलकर 'गुरुग्रंथसाहिब' और गुरु गद्दी का अपमान किया है। गुरु हरिराय खुशामद को भी माया का प्रपंच मानते थे। गुरु हरिराय ने एक सिक्ख संदेश वाहक के हाथ रामराय को संदेश भेजा–''रामराय पुत्तर! तूने वह पाप किया है, जिसे बख्शा नहीं जा सकता। तेरे लिए इसकी यही सजा है तू अब कभी हमें अपना मुंह मत दिखाना। यदि तू अब यहाँ वापस आया तो हम अपना शरीर त्याग देंगे।'' रामराय को गुरु हरिराय का संदेश मिला तो वह सन्न रह गया। उसमें फिर अपने पिताश्री के सामने जाने का साहस नहीं हो सका।

बादशाह औरंगजेब से विदा लेकर रामराय करतारपुर आ गया और अब उसने गुरु हरिराय का खुलकर विरोध करना आरम्भ कर दिया। उसने औरंगजेब से फरियाद करके गुरु गद्दी पर अपना अधिकार जमाना चाहा। लेकिन औरंगजेब ने इस काम में तो उसकी कोई सहायता नहीं की, परन्तु उसे देहरादून के आस-पास की एक बहुत बड़ी जागीर दे दी और कहा कि वहाँ रहकर यह बादशाह के हितों का ख्याल रखे और अपनी एक अलग सेना

बनाकर उसमें सिक्खों को शामिल करे । परन्तु वह ऐसा तो नहीं कर सका लेकिन एक आश्रम वहाँ अवश्य बना लिया । रामराय ने उस जागीर में एक नगर बसाया, जो बाद में देहरादून के नाम से प्रसिद्ध हुआ । कहा यही जाता है कि पहले वहाँ देहरादून नाम का कोई नगर नहीं था । सिक्ख सेना बनाने का रामराय का सपना, केवल सपना बनकर ही रह गया । सन् 1651 में, मालवा के कुछ सिक्ख गुरु हरिराय के पास आए और उन्हें प्रार्थना करके अपने साथ ले गए ।

वाणी का प्रताप

मालवा के एक गांव में गुरु हरगोबिन्द का एक शिष्य रूपचन्द रहता था । उसने मुगलों से युद्ध करते समय गुरु हरगोबिन्द की बड़ी सहायता की थी । युद्ध भूमि में ही रूपचन्द ने वीरगति प्राप्त की थी । रूपचन्द के दो पुत्र थे, जो इन दिनों अनाथों की तरह बड़ी कठिनाई से अपना जीवन यापन कर रहे थे । वे रूपचन्द के एक भाई के यहाँ रहते थे । वह और उसकी पत्नी उन दोनों बालकों को बड़ा प्रताड़ित करती थी । रूपचन्द के इस भाई का नाम काला था । अपने नाम के अनुसार ही उसका मन भी बड़ा काला था । गांव के लोगों ने उससे कहा कि गुरु हरिराय जी मालवा आए हुए हैं । अगर वह रूपचन्द के इन दोनों बेटों–फूल और संवली को लेकर उनके पास जाए तो वे अवश्य इनकी सहायता करेंगे ।

काला ने गांव वालों की बात मान ली । वह उन दोनों बच्चों को लेकर गुरु हरिराय के दरबार में गया । वहाँ जाने से पहले ही उसने उन्हें सिखा दिया था कि वे गुरु जी के सामने पहुँचकर अपना पेट बजाने लगें और कुछ न बोलें । अपने चाचा के सिखाने में आकर बच्चों ने ऐसा ही किया । गुरु जी के सामने पहुँचकर उन्होंने अपने हाथों से तबले की तरह अपने-अपने पेट बजाने शुरू कर दिये । गुरु जी ने आश्चर्य से उन्हें देखकर अपने सेवादारों से पूछा–

ये बच्चे किसके हैं और ये इस तरह पेट क्यों बजा रहे हैं ?

इस पर सेवादारों ने बताया कि ये बच्चे रूपचन्द के हैं । रूपचन्द ने गुरु हरगोबिन्द के साथ कंधे-से-कंधा मिलाकर मुगलों के साथ तीसरे युद्ध में बड़ा भारी पराक्रम दिखाया था और वीरगति प्राप्त की थी । इनके पालन-पोषण का कोई ठिकाना नहीं है । गुरु हरिराय बच्चों की करुण दशा देखकर स्वयं भी द्रवित हो उठे । वे बोले–

> **नहीं ! हमारे होते हुए ये बच्चे अनाथ नहीं हैं । आज से ये हमारे साथ रहेंगे । इनकी परवरिश गुरु गद्दी से की जाएगी और तुम देखना एक दिन ये बच्चे राजा बनेंगे ।**

दोनों बच्चों को हरिराय के पास छोड़ कर काला घर लौटा और उसने अपनी पत्नी को पूरी बात बताई तो वह बोली–

चलो अच्छा हुआ जो बला टली। लेकिन तुमने अपने बच्चों के लिए क्यों नहीं कुछ मांगा?

ये तो मुझसे गलती हो गई।

तुम अभी वापस जाओ और अपने बच्चों को लेते जाओ। गुरु जी से इनके लिए भी आशीर्वाद लेकर आओ।

अपनी घरवाली के कहने पर काला तत्काल अपने बच्चों को लेकर गुरु जी के पास पहुँचा। उसे देखकर गुरु जी ने उससे पूछा–''अब क्या बात है काला?''

''महाराज! मैं ग़रीब आदमी हूँ। बड़ी मुश्किल से अपना और अपनी गृहस्थी का पेट भर पाता हूँ। ये मेरे बच्चे हैं। आप इन्हें भी अपना आशीर्वाद दीजिए।'' काला ने बड़ी विनम्रता के साथ हाथ जोड़ कर गुरु जी से कहा। गुरु जी ने काला के बच्चों को आशीर्वाद दिया कि तुम्हारे बच्चे 22 गांवों के मालिक बनेंगे। और उसे गुरु गद्दी से बहुत सा धनधान्य देकर विदा किया। काला खुश होता हुआ अपने घर लौट गया। मालवा में अपना धर्म प्रवचन करके गुरु हरिराय वापस अमृतसर चले आए। कालांतर में गुरु हरिराय के वरदान सही साबित हुए। फूल और सांवली बड़े होकर जींद और पटियाला के राजा बने। काला के पुत्र 22 गांवों के स्वामी बने। यह गुरु हरिराय की वाणी का प्रताप ऐसा था। ये सत्य के पुजारी थे। उनके मुख से सत्य वचनों के अतिरिक्त भूले से भी असत्य वचन नहीं निकलते थे। उनकी वाणी ही वरदान थी।

गुरु हरिराय का जीवन लंबे समय तक उनका साथ नहीं दे सका। अभी मुश्किल से उन्होंने 32 वर्ष ही पूरे किए थे कि वे उनके मन में संसार के प्रति विरक्ति की भावना उत्पन्न हो गई। अपना अन्तिम समय निकट देखकर उन्हें गुरु गद्दी किसी को देने की चिन्ता हुई। उनका दूसरा पुत्र हरिकृष्ण अभी छोटा ही था। गुरु जी की पारखी नजर ने आयु के पार को परख लिया और उन्होंने केवल 5 वर्ष की आयु के हरिकृष्ण का गुरु गद्दी सौंप दी। अतः वे 6.10.1661 ई० को कीरतपुर (रोपड़) में ज्योति जोत समा गये।

गुरु हरिकिशन जी

7-7-1656 ई० - 30-3-1664 ई० (7 वर्ष 8 महीने 23 दिन)

8. गुरु हरिकिशन

गुरु हरिकिशन सिक्खों के आठवें गुरु थे । आप का जन्म 7-7-1656 ई० को कीरतपुर (रोपड़) में गुरु हरिराय के घर हुआ था । उन्हें गुरु गद्दी केवल 5 वर्ष की आयु में प्राप्त हो गई थी । जबकि उनके सहज गुणों का अभी पूरी तरह से विकास भी नहीं हुआ था । उन्हें गुरु गद्दी 6.10.1661 ई० को प्राप्त हुई थी । क्योंकि गुरु हरिकिशन के पिता श्री गुरु हरिराय युवा अवस्था में ही प्रभु को प्यारे हो गये थे । उनका बड़ा पुत्र रामराय नानक वाणी के एक झूठ के कारण गुरु के विश्वास से वंचित हो गया था और स्वयं गुरु हरिराय ने उसे अपने पास आने के लिए, सदा-सदा के लिए मना कर दिया था। मुगल शहंशाह औरंगजेब की मेहरबानी से उसे देहरादून के पास एक बड़ी जागीर प्राप्त हो गई थी । इसी कारण वह वहाँ पर अपना आश्रम बनाकर उपदेश देने लगा था और वहाँ के लोग उसे बाबा रामराय के नाम से पहचानने लगे थे ।

रामराय को यह पूरा विश्वास था कि गुरु गद्दी पाने के लिए औरंगजेब उसकी भरपूर सहायता करेगा । परन्तु वह उसे टालता रहा । इधर अपने छोटे भाई को गुरु गद्दी पाते देखकर रामराय ईर्ष्या से भर उठा। रामराय ने औरंगजेब को भड़काया—आपके कारण ही मुझे अपने घर से निकाला गया है । अगर मैं आपका पक्ष न लेता तो मेरे पिता मुझे इतना कड़ा दण्ड न देते और न मेरे हाथों से गुरु गद्दी छिनती । इसलिए आपको मेरी सहायता करनी चाहिए और गुरु गद्दी पर अगर उसका व्यक्ति रहेगा तो सिक्खों की इतनी बड़ी शक्ति उसकी मुट्ठी में आ जाएगी । वह इस लड़ाकू कौम पर अपना नियंत्रण रखेगा तो उसे किसी ओर से भी शत्रु का भय नहीं रहेगा । रामराय की खुशामदी बातों से वह बड़ा खुश हो गया था और उसने रामराय को उसकी सहायता करने का वचन दे दिया था । रामराय मुगल सम्राट् का वचन पाकर आश्वस्त हो गया था और गुरु गद्दी पाने के स्वप्न देखने लगा ।

यह एक सर्वविदित तथ्य है कि 'घर का भेदी लंका ढाए' । इस उक्ति के अनुसार रामराय ही वह घर का भेदी था, जो औरंगजेब से मिलकर अपने ही घर को नष्ट करना चाहता था। किसी भी कौम, संस्था या राजसत्ता को

नष्ट करने के लिए आवश्यक है, उनके बीच में फूट डाल दी जाए। यही एक शस्त्र रामराय के रूप में औरंगजेब के हाथ लग गया था।

रामराय ने औरंगजेब के कान भरे–"बादशाह सलामत! आप अच्छी तरह जानते हैं कि गुरु नानक की गद्दी अब एक फकीर की गद्दी न होकर राजसी गद्दी बन गई है। उस पर 5 वर्ष के मेरे भाई को बिठा देना, कहाँ का न्याय है? उस पर मेरा केवल मेरा अधिकार है।" "जानता हूँ रामराय! परन्तु किया क्या जाए?" औरंगजेब ने पूछा–"मैं आपके लिए कुछ भी कर सकता हूँ।" तब रामराय ने बादशाह को समझाया–"आप हरिकिशन को दिल्ली बुलाकर पूछिए कि उसने इतनी सेना और हथियार क्यों इकट्ठे कर रखे हैं। इसकी आवश्यकता क्या है?" "हाँ यह तरीका अच्छा है।" औरंगजेब को यह बात पसन्द आई।

1. एक तीर से दो शिकार

रामराय ने एक तीर से दो शिकार किये थे। उसे पता चला था कि गुरु गद्दी पर बैठते समय हरिकिशन ने प्रण किया है कि वह औरंगजेब से मिलने कभी दिल्ली नहीं जाएगा। वह सोच रहा था कि अगर औरंगजेब के बुलाने पर उसका भाई गुरु हरिकिशन, औरंगजेब से मिलने चला आया तो उसका प्रण टूट जाएगा कि वह कभी औरंगजेब से मिलने दिल्ली नहीं जाएगा और अगर वह नहीं आया तो औरंगजेब इस बात से अवश्य नाराज हो जाएगा कि उसकी आज्ञा का पालन नहीं किया गया। इस तरह हरिकिशन को दोनों ओर से नाराजगी सहनी पड़ेगी। प्रण टूट जाने पर सिक्ख संगत नाराज होगी और हुक्म उदूली करने पर औरंगजेब नाराज हो जाएगा। फिर मेरी बन आएगी। इसी तरह वह खुश हो रहा था।

उचित समय देखकर औरंगजेब ने राजा जय सिंह को बुलवाया और उन्हें गुरु हरिकिशन के नाम एक पत्र दिया। पत्र में उसने गुरु गद्दी और सिक्ख गुरुओं की बड़ी चापलूसी भरी बातें लिखी थीं। उसने लिखा था कि वह उनके दर्शनों से निहाल होना चाहता है। क्योंकि उनके बारे में लोगों ने यहाँ तरह-तरह के भ्रम फैला रखे हैं कि गुरु हरिकिशन तो अभी बालक हैं उसमें गुरु होने की योग्यता भी नहीं है और उसे गुरु गद्दी पर बैठा दिया गया है।

औरंगजेब ने राजा जय सिंह को यह भी कह दिया था कि अगर गुरु हरिकिशन दिल्ली आने के लिए तैयार न हों तो वे उन्हें जबरन लेकर आएं।

राजा जय सिंह सारे अधिकार लेकर कीरतपुर की ओर चल दिया। क्योंकि गुरु हरिकिशन उन दिनों कीरतपुर में थे। गुरु हरिकिशन आयु में छोटे अवश्य थे, परन्तु गुरु गद्दी पर बैठते ही उनके भीतर गुरु गद्दी की दैवी शक्ति विराजमान हो गई थी। वे अन्धकार में प्रकाश की भाँति थे। सज्जनता, साधुता, सहजता, पर दुःख कातरता, निर्भयता और सत्यता का अटूट विश्वास उनमें भर गया था।

दूसरी ओर रामराय दुष्टता की प्रतिमूर्ति था। वह मोह, माया, वैर, ईर्ष्या, कायरता और नीचता से भरा-पूरा अंधकार था। संसार के श्रेष्ठ महापुरुषों ने सदा जन-साधारण का ही पक्ष लिया है, जबकि माया-मोह में फंसे लोग हुकूमत की चापलूसी में अपना बहुमूल्य समय नष्ट करते हैं। रामराय यही कर रहा था और गुरु हरिकिशन का लक्ष्य जन-कल्याण बन गया था।

राजा जय सिंह औरंगजेब के दूत की हैसियत से जब कीरतपुर गुरु हरिकिशन के दरबार में पहुँचे तो उनका खूब आदर-सत्कार किया गया। राजा जयसिंह ने औरंगजेब का पत्र देकर शेष बातें मुंह जबानी सुना दी कि औरंगजेब गुरु हरिकिशन से क्या चाहता है? गुरु संगत ने राजा जयसिंह से एक रात विश्राम करने के लिए कहा और पत्र का उत्तर दूसरे दिन देने की बात कही। राजा जयसिंह गुरु हरिकिशन की बात मानकर विश्राम करने चले गए।

2. अनूठी विदाई

उसी रात गुरु संगत के श्रेष्ठ और विद्वान् संतों ने मुगल बादशाह औरंगजेब के पत्र पर विचार किया। वे समझ रहे थे कि इसमें धूर्त औरंगजेब की अवश्य कोई चाल है। वह गुरु हरिकिशन को दिल्ली बुलाकर कुछ अप्रिय करना चाहता है। दर्शनों की बात तो केवल धोखा है। गुरु हरिकिशन ने भी कहा कि यदि वे दिल्ली जाते हैं और औरंगजेब से मिलते हैं तो उनका प्रण टूट जाएगा। दूसरे अगर वे नहीं जाते हैं तो मुगलिया सल्तनत से उलझने के लिए हमें तैयार रहना होगा। इसमें भयभीत होने की क्या बात है? तुम देखना वह मुझसे मिल नहीं पाएगा। सिक्ख संगत ने गुरु जी की बात पर गम्भीरता के साथ विचार किया और अन्त में निर्णय किया गया कि गुरु हरिकिशन, बादशाह औरंगजेब से मिलने दिल्ली अवश्य जाएंगे। लेकिन वे अकेले नहीं,

उनके साथ बहादुर सिक्खों का एक जत्था भी जाएगा । उन्हें गुरु जी के कथन पर पूरा भरोसा था ।

गुरु हरिकिशन के विषय में उनकी आयु के कारण सिक्ख संगत में भी बड़ा भारी भ्रम था । किन्तु उन्हें उनकी असली शक्ति का पता नहीं था । बालक होते हुए भी वे बाल श्रीकृष्ण की भाँति भीतर से पूर्ण पुरुष थे । उनके जीवन में होने वाले चमत्कारों ने बाद में इसे बखूबी सिद्ध कर दिया था । वे सभी कलाओं के ज्ञाता सिद्ध पुरुष थे । समर्थ और सर्व शक्तिमान थे । जबकि उन्हें गुरु गद्दी पर बैठे अभी कुल तीन वर्ष ही हुए थे ।

गुरु जी के साथ सिक्खों का एक जत्था और कितने ही विशेष मंसद दिल्ली जाने के लिए तैयार हो गए । राजा जयसिंह ने भी गुरु माता और सारी सिक्ख संगत को विश्वास दिला दिया था कि गुरु हरिकिशन का बाल भी बांका नहीं होने देंगे । फिर भी शंका बनी ही रही थी । क्योंकि मुगल बादशाहों का सिक्खों के प्रति वैरभाव तथा द्वेष किसी से भी छिपा नहीं था । गुरु अर्जन देव और गुरु हरगोबिन्द के साथ उन्होंने जैसा व्यवहार किया था, वह भी उनकी आशंका का कारण था ।

जिस समय गुरु हरिकिशन दिल्ली के लिए चले उस समय उनकी आयु केवल आठ वर्ष की थी । सभी सिक्ख संगतों और परिवार के लोगों ने उन्हें अश्रुपूरित विदाई दी । सारा नगर ही उन्हें विदाई देने उमड़ पड़ा था । एक बार फिर वैसा ही दृश्य उपस्थित था जैसे श्रीकृष्ण कंस के बुलाने पर अक्रूर जी के साथ मथुरा जा रहे थे । गुरु माता से अपने पुत्र को अकेला छोड़ा नहीं जा रहा था । इस कारण वे भी उनके साथ चल पड़ी थीं ।

3. गूंगा-बहरा जब बोल उठा

राजा जय सिंह गुरु हरिकिशन को लेकर चले तो उनका पहला पड़ाव जिला अम्बाला में पंजोखरे नगर में पड़ा । लोग हज़ारों की संख्या में बाल गुरु के दर्शन करने आने लगे और भेंट चढ़ाने लगे । लोग उनकी जय-जयकार करने लगे । उनकी इतनी प्रसिद्धि देखकर राजा जयसिंह हैरान हो गये । पंजोखरे में एक विद्वान् ब्राह्मण रहता था । उसका नाम पंडित रामलाल था । उससे गुरु की महिमा सहन नहीं हुई तो उसने दरबार में आकर गुरु के ज्ञान को चुनौती देते हुए कहा कि यदि वे इतने ज्ञानी महापुरुष हैं तो गीता के कुछ

श्लोक अर्थ सहित सुनाएं । क्योंकि इतनी छोटी आयु का बालक विद्वान् नहीं हो सकता और जो विद्वान् नहीं है, योग्य नहीं है, उसे गुरु गद्दी का अधिकार कैसे मिल सकता है ।

पंडित जी ने आगे कहा–

द्वापर युग में श्रीकृष्ण हुए थे । आपका नाम तो उनसे भी बड़ा हरिकिशन है । यदि आप इस नाम के योग्य हैं तो गीता के श्लोकों के अर्थ सुनाकर हमारी शंका दूर कीजिए ।

गुरु जी ने पंडित जी को उत्तर दिया–

पंडित जी महाराज ! ज्ञान और सत्य-धर्म का उपदेश केवल आयु के अधीन नहीं है । यह तो ईश्वर की कृपा के अधीन है । ईश्वर की जिस पर कृपा हो जाती है, तब एक गूंगा-बहरा भी गीता के श्लोकों का अर्थ सुना सकता है ।

तब पंडित जी ने कहा–

अगर ऐसी बात है तो आप किसी गूंगे-बहरे से ही ऐसा चमत्कार कराके दिखा दें । मैं आपका सेवक बन जाऊँगा ।

पंडित रामलाल की चुनौती स्वीकार करके गुरु हरिकिशन ने किसी गूंगे-बहरे व्यक्ति को ढूंढकर लाने को कहा । तत्काल पंडित जी के कहने पर नगर से छज्जू नाम के एक गूंगे-बहरे झींवर को बुलाया गया । उसके वस्त्र फटे हुए थे और धूल से मैले हो रहे थे ।

न जाने उस झींवर के कौन से पुण्य कर्मों का फल उदित होने वाला था कि वह वहाँ आ गया था । गुरु जी ने उसे अपने पास बुलाया और उसके सिर पर अपनी रत्नजड़ित छड़ी को छुआकर उससे कहा–

छज्जू भाई ! इन पंडित जी को गीता के कुछ श्लोकों को सुनाकर उनका अर्थ बता दो ।

उस छड़ी को छुआते ही छज्जू के पूरे शरीर में ज्ञान का जैसे प्रकाश पुंज फूट पड़ा । उसके चेहरे पर एक अजीब सा तेज उभर आया । वह सीधा होकर पंडित जी की ओर मुड़ा । उसका चेहरा अद्‌भुत रूप से शांत था । ओठों पर मधुर मुस्कान थी । सारी संगत और पंडित जी उसे ही देख रहे थे । पीछे गद्दी पर बैठे गुरु हरिकिशन जी मन्द-मन्द मुस्कुरा रहे थे । एकाएक समुधर वाणी में

छज्जू ने गीता के श्लोक पढ़ने और उनके अर्थ बताने आरम्भ कर दिए। लोग मुग्ध भाव से सुनते रहे। समय का पता ही नहीं चला। अन्त में वह रुका और गुरु जी के चरणों में झुक गया। अचानक सारा जन समुदाय गुरु हरिकिशन जी की जय-जयकार कर उठा। पंडित जी भी दौड़कर गुरु हरिकिशन जी के चरणों में गिर पड़े और क्षमा मांगने लगे।

उस दिन के बाद पंडित जी और छज्जू सदैव के लिए गुरु हरिकिशन के सेवादार बन गए। इस अलौकिक दृश्य को देखकर राजा जयसिंह भी मन ही मन गुरु जी का भक्त हो गया।

4. औरंगजेब का डर

फिर कई दिनों की यात्रा करने के बाद गुरु हरिकिशन का रथ दिल्ली पहुँचा। दिल्ली की सिक्ख संगत ने उनका भव्य स्वागत किया। वहाँ औरंगजेब ने उनके ठहरने की पूरी व्यवस्था कर रखी थी। लेकिन गुरु जी ने वहाँ ठहरने से इनकार कर दिया। उन्होंने सिक्ख संगतों के साथ ठहरना ही उचित समझा। किन्तु तभी राजा जयसिंह ने उनसे अपने निजी बंगले में ठहरने की प्रार्थना की। गुरु जी ने राजा जयसिंह की प्रार्थना स्वीकार कर ली। राजा जयसिंह की वह विशाल कोठी उनकी निजी जागीर थी। यह वह स्थान था, जहाँ दिल्ली में आजकल गुरुद्वारा बंगला साहिब स्थित है।

उस कोठी में गुरु जी के लिए सभी सुख-सुविधाओं का ध्यान रखा गया था और सुरक्षा का भी पूरा इन्तजाम राजा जयसिंह ने किया था। गुरु जी जब तक उस बंगले में रहे, रोज भवन कीर्तन होते रहे। दूर-दूर से आने वाली संगतें वहाँ जुड़ती रहीं। लंगर चलता रहा। गुरु जी के यश और चमत्कारों की चर्चा बादशाह औरंगजेब के कानों तक पहुँचती रही। औरंगजेब ने अपने राजकुमारों और दरबार के कितने ही विद्वानों और लोगों को गुरु जी के दर्शनों के लिए भेजा और उनके बारे में अधिक से अधिक जानकारी प्राप्त करता रहा। वे लौटकर गुरु जी के प्रभाव को इतना बढ़ा-चढ़ाकर बताते कि औरंगजेब की हिम्मत नहीं होती थी कि वह वहाँ जाए और उनसे बात करे। उसे पता था कि गुरु हरिकिशन का प्रण है कि बादशाह से भेंट नहीं करना है। उसे लगता कि अगर वह वहाँ गया तो उसके प्रभाव से कहीं उसका कुछ अनर्थ न हो जाए। यही भय उसे वहाँ जाने से रोक रहा था।

परन्तु रामराय औरंगजेब की इस टाल-मटोल करने की नीति से परेशान हो रहा था। उसे तो आशा थी कि औरंगजेब गुरु हरिकिशन के दिल्ली पहुंचने पर उसे जेल में डलवा देगा। परन्तु ऐसा नहीं हो रहा था। गुरु हरिकिशन के तेज प्रताप की चर्चा से और लोगों की विशाल भीड़ के वहाँ रोज एकत्र होने की बात सुनकर वह भयभीत था कि अगर उसने गुरु जी पर हाथ डाला तो लोग विद्रोह कर उठेंगे। इसीलिए उसका हौंसला नहीं हो रहा था। लेकिन जब रामराय ने उसे और भी ज्यादा भड़काया तो उसने गुरु हरिकिशन के पास जाने का मन बनाया और वह तैयारी करने लगा। किन्तु भीतर से उसका मन भयभीत भी होता रहा। वह पंजाबियों के हौंसले को जानता था और उनके निर्भय स्वरूप से परिचित था। उसे डर था कि कहीं लेने के देने न पड़ जाएं।

5. सबका दुःख अपने ऊपर

उन्हीं दिनों दिल्ली में हैजा फैल गया। लोग हैजे की महामारी से फटाफट मरने लगे। सब ओर त्राहि-त्राहि मच गई। तब लोगों ने गुरु जी की शरण में जाकर अरदास की कि उनकी रक्षा करो। औरंगजेब को भी कुछ समय रुकने का बहाना मिल गया। गुरु जी ने जब बंगला साहिब में एक हौज बनवाया और उसमें स्वच्छ जल भरवा दिया। वे रोज सुबह उसमें पैर डालकर बैठ जाते और लोगों से उस जल को पीने के लिए कहते। लोगों ने देखा कि जिस रोगी को उस हौज का जल पिलाया गया। वह तत्काल निरोग हो गया। फिर तो आपाधापी मच गई। कुछ ही दिनों में महामारी का अन्त हो गया। औरंगजेब भी यह चमत्कार देखकर हैरान रह गया और गुरु हरिकिशन के प्रभाव से वह और भी अधिक डर गया। दिल्ली की महामारी का तो अन्त हो गया परन्तु गुरु जी के शरीर पर चेचक का प्रकोप हो गया। सारी सिक्ख संगत गुरु जी की दशा देखकर परेशान हो उठी। लोगों ने उनसे कहा कि गुरु जी आपने दूसरों को तो निरोग कर दिया आप स्वयं क्यों रोगी हो गये। आप अपने प्रभाव से अपना रोग ठीक कीजिए। तब गुरु जी ने कहा—

सन्तो ! हमारा यह नियम नहीं है कि हम ईश्वर से अपने लिए मेहर मांगें । हम तो लोगों के लिए ईश्वर से मेहर मांग सकते हैं । ईश्वर ने गुरु घर को सारे अधिकार दे रखे हैं । किन्तु उन अधिकारों का प्रयोग हम अपने लिए नहीं कर सकते ।

गुरु जी पर चेचक के भयानक प्रकोप का समाचार पाकर औरंगजेब इस बार फिर उनसे मिलने चल दिया । गुरु हरिकिशन के पास समाचार पहुँचा कि औरंगजेब आपसे मिलने आ रहा है । लेकिन गुरु जी ने क्षीण सी वाणी से कहा कि वह नहीं आ रहा हैं लोगों को विश्वास नहीं हुआ । औरंगजेब के आने की प्रतीक्षा करते रहे लेकिन फिर समाचार आया कि किसी आवश्यक कार्य के कारण औरंगजेब वापस लौट गया है । सारी सिक्ख संगत हैरान थी । उनकी दशा देखकर वे रोने लगे । गुरु हरिकिशन को भी अपना अन्त निकट आता हुआ प्रतीत होने लगा। उन्होंने लोगों से रोने के लिए मना किया और गुरुबाणी का कीर्तन करने को कहा ।

सिक्ख संगत को लगने लगा कि अब गुरु जी नहीं बचेंगे । तब उन्होंने गुरु जी से निवेदन किया–"महाराज आप तो हमें छोड़कर जा रहे हैं । किन्तु हमें यह तो बताते जाइए कि आपके पश्चात् सिक्ख संगत का गुरु कौन होगा? गुरु जी का अन्तिम श्वास रह गया था। तभी उनके मुख से निकला–"बाबा बकाले ।" गुरु जी के मुख से ये अन्तिम शब्द निकले और उन्होंने अपना नश्वर शरीर त्याग दिया । 30.3.1664 ई० को दिल्ली में गुरु जी ज्योति जोत समा गये । इस प्रकार केवल 8 वर्ष की आयु में तीन वर्ष तक गुरु गद्दी को सुशोभित करके गुरु हरिकिशन प्रभु को प्यारे हो गये । गुरु जी के पवित्र शरीर का दाह-संस्कार यमुना किनारे बाला घाट पर हज़ारों अश्रुपूरित आँखों के सामने कर दिया गया । गुरु माता की आँखों से अश्रुओं की अविरल धारा बहती रही । औरंगजेब उस समय भी वहाँ नहीं पहुँच सका ।

गुरु तेग बहादुर जी

1-4-1621 ई० - 11-11-1675 ई० (54 वर्ष 7 महीने 10 दिन)

9. गुरु तेग बहादुर

1. जन्म

गुरु तेग बहादुर का जन्म 1.4.1621 ई० गुरु हरगोबिन्द की पत्नी नानकी देवी के गर्भ से अमृतसर में हुआ था। उन दिनों गुरु हरगोबिन्द अमृतसर में निवास करते थे। गुरु हरगोबिन्द ने अपनी सन्तान के लिए शक्ति और धर्मशास्त्रों के अध्ययन की व्यवस्था की थी। युद्ध कला और घुड़सवारी में भी उन्हें पारंगत कराया था। उस वक्त गुरु तेग बहादुर ने अपने अन्य भाइयों की अपेक्षा बहुत जल्द इन विद्याओं में दक्षता प्राप्त कर ली थी। किन्तु उनकी रुचि धर्मशास्त्रों में अधिक थी। इसीलिए वे प्रायः हर समय ईश्वर आराधना के लिए समाधि लगाकर बैठा करते थे।

लेकिन समय आने पर उन्होंने शस्त्र संचालन के भी अपने जौहर दिखाए थे। जिन दिनों गुरु हरगोबिन्द कीरतपुर में थे, उन्हीं दिनों मुगल सेना ने कीरतपुर पर आक्रमण कर दिया था। उस समय छोटी सी आयु में ही तेग बहादुर ने अपनी तलवार से युद्ध कौशल का ऐसा जलबा दिखाया था कि बड़े-बड़े योद्धा भी दांतों तले उंगली दबाने के लिए मजबूर हो गए थे। कीरतपुर छोड़कर गुरु तेग बहादुर बकाला आकर रहने लगे थे। वहाँ एकान्त में रहकर ईश्वर की उपासना में उनका अधिकांश समय व्यतीत होता था। उनका विवाह 13 वर्ष की आयु में ही करतारपुर निवासी भाई लालचन्द की पुत्री गुजरी देवी के साथ कर दिया था।

गुरु तेग बहादुर विश्व इतिहास में एकमात्र ऐसे धार्मिक महापुरुष थे जिन्होंने धर्म के लिए अपने प्राण न्योछावर कर दिये। आप सिक्खों के नौंवे गुरु थे। परन्तु हिन्दू धर्म की रक्षा के लिए आपने एक पल भी नहीं लगाया। इसी कारण आपको हिंद की चादर कहा जाता है। अपने धर्म और सुख-स्वार्थ के लिए त्याग करने वालों की इस संसार में कमी नहीं है, किन्तु दूसरों के हित के लिए अपना सर्वस्व बलिदान करने वाला कोई बिरला ही होता है। सिक्ख धर्म की गुरु परम्परा में हिन्दू धर्म की रक्षा के लिए अपने प्राणों की आहुति देने वाले गुरु तेग बहादुर थे। बलिदान का ऐसा उदाहरण किसी गुरु परम्परा में

ढूंढना सरल नहीं है । बहुत पहले महर्षि दधीचि ने भी जन रक्षा के लिए नहीं, देवताओं की रक्षा के लिए अपनी अस्थियों का दान किया था । परन्तु गुरु तेग बहादुर ने जन रक्षा हेतु अपना शीश कटवाया था और अपनी आन को नहीं मिटने दिया था ।

धर्म हेतु साका जिन कीया । सीस दिया पर सिरड़ न दीया । ।

ऐसे थे गुरु तेग बहादुर, जिनकी तेग का लोहा मुगलिया सल्तनत ने भी माना था । गुरु हरिकृष्ण के स्वर्गारोहण के समय उनके मुख से अन्तिम शब्द 'बाबा बकाले' निकला, बाबा रामराय और धीरमल के अलावा सोढ़ी परिवार के लगभग बाईस लोगों ने अपने आपको सिक्खों का गुरु घोषित कर दिया और सभी ने बकाले में जाकर अपनी-अपनी गुरु गद्दियां जमा लीं । यह कर्म उनकी स्वार्थी प्रवृत्ति का परिचायक था । ऐसे समय में सच्चे गुरु की पहचान जन साधारण के लिए कठिन हो गई । किसको गुरु मानें, किसको नहीं । श्रद्धालु सिक्ख बकाला आते और अपनी इच्छा से जिसे चाहते, भेंट दे जाते । किन्तु मन सन्तुष्ट नहीं हो पाता था । उनके मन में गुरु के प्रति सन्देह बना ही रह जाता था और सच्चे गुरु की तलाश में मन भटकता रहता था । धीरे-धीरे इन गुरुओं की ओर से उनका विश्वास उठता गया । लोगों की दुकानदारी झूठे गुरुओं के रूप में दम तोड़ने लगी ।

परन्तु जन साधारण के मन में सच्चे गुरु की तलाश की आशा अभी भी कम नहीं हुई थी । उन्हें यह विश्वास था कि एक न एक दिन उस सच्चे गुरु का पता अवश्य लगेगा, जिसकी ओर गुरु हरिकृष्ण ने अपने जीवन के अन्त में संकेत दिया था । कौन था वह व्यक्ति? जो बकाले में था और सिक्खों का असली गुरु बनने का हकदार था । लोग अपने-अपने तरीके से खोजते, परन्तु सफल नहीं हो पाते थे ।

उन सभी गुरुओं की भीड़ में रामराय ने गुरु होने का आडम्बर सबसे ज्यादा फैला रखा था । औरंगजेब का समर्थन भी उसे प्राप्त था । उसके दरबार में सिक्खों की भीड़ भी कुछ ज्यादा रहती थी । धन के बल पर बहुत से मंसद भी उसने अपनी ओर कर लिये थे । कुछ बुद्धिमान सिक्खों ने लोगों के इस भ्रम को तोड़ने का प्रयत्न अवश्य किया, परन्तु रामराय का जाल इतना मजबूत था कि उसे तोड़ पाना इतना आसान नहीं था । लेकिन परमात्मा तो

सत्य-असत्य को प्रकट करने में अधिक देर नहीं लगाता। वह कोई न कोई ऐसा मार्ग निकालता ही है, जिससे दूध का दूध और पानी का पानी हो जाता है।

2. दूध का दूध पानी का पानी

इस बार परमात्मा ने मक्खन शाह लुबाना नामक व्यापारी को अपना माध्यम बनाया। मक्खन शाह लुबाना भारत से कितने ही प्रकार के माल खरीदकर पानी के जहाज से विदेशों में बेचने जाया करता था। एक बार जब उसका जहाज समुद्र में विदेश से वापस भारत की ओर यात्रा कर रहा था तब रास्ते में भयानक तूफान आ गया। तूफान इतना भयानक था कि जहाज के डूबने का अन्देशा हो गया। जहाज में सवार सभी लोग घबराकर परमात्मा से अपने जीवन की रक्षा की भीख मांगने लगे।

मक्खन शाह लुबाना गुरु नानक का भक्त था। जहाज समुद्र की तूफानी लहरों में पलटकर डूब जाने ही वाला था कि मक्खन शाह ने गुरु नानक का स्मरण किया और गुरु गद्दी पर 500 अशर्फियां भेंट करने की अरदास की। उसने कहा–"हे गुरु देव! यदि मेरा जीवन बच गया और यह जहाज सकुशल किनारे जा लगा तो भारत लौटकर मैं गुरुगद्दी पर 500 अशर्फियां भेंट करने का संकल्प करता हूँ। हे सच्चे पातशाह! हमारी रक्षा कर।"

मक्खन शाह लुबाना की अरदास सच्चे गुरु के पास तत्काल जा पहुँची। क्योंकि उसी समय जहाज उफनती लहरों पर इस तरह से स्थिर हो गया, जैसे उसे किसी ने अपने मजबूत हाथों से थाम लिया हो। भयानक तूफान प्रचण्ड लहरें अपना सिर धुन-धुनकर थक गई। किन्तु जहाज और उसमें उपस्थित कर्मचारियों का बाल भी बांका नहीं हुआ। उन्हें ऐसा लगा कि जैसे किसी ने जहाज को अपने कंधों पर लाद लिया हो और उसे ले जाकर भारत भूमि के निकट एक टापू के पास खड़ा कर दिया हो। तूफान शान्त हो गया और जहाज सकुशल भारत भूमि के किनारे आ गया। सभी सकुशल भारत भूमि पर उतर गए। मक्खन शाह ने दोनों हाथ उठाकर परमात्मा का

धन्यवाद दिया और अपने घर लौटकर उसने सबसे पहला काम यह किया कि 500 अशर्फियां गुरु नानक की गुरु गद्दी पर भेंट देने के लिए घर से चल पड़ा।

उसे पता चला कि गुरु गद्दी इन दिनों बकाले में है। वह वहाँ पहुँचा तो वह यह देखकर हैरान रह गया कि वहाँ पर 22 गुरु गद्दियां हैं। उसका दिमाग चकरा गया। उसकी समझ में नहीं आया कि असली गुरु गद्दी कौन सी है। तब उसने मन में निश्चय किया कि वह हर गद्दी पर 5 अशर्फियां भेंट करेगा। जो सच्चा गुरु होगा वह उससे 500 अशर्फियां ही लेगा, 5 नहीं। ऐसा सोच कर वह प्रत्येक गद्दी पर गया और उसने सभी गद्दियों पर 5-5 अशर्फियां भेंट चढ़ाई। किन्तु किसी ने भी उससे 500 अशर्फियां नहीं मांगी। वह सोच में पड़ गया। तब उसने निराश होकर लोगों से पूछा कि क्या सोढ़ी अंश का कोई और भी गुरु यहाँ है? उन लोगों ने उत्तर दिया–

"हाँ, एक मस्ताना जोगी और है। लेकिन उसकी कोई गुरु गद्दी नहीं है। वह पागलों की भाँति जमीन के अन्दर एक गुफा बनाकर, उसमें पड़ा रहता है। वह सिक्खों के पूर्व गुरु हरगोबिन्द का पुत्र तेग बहादुर है। वह रात-दिन समाधि लगाए रहता है और भगवान् का नाम जपता रहता है। उसके अलावा कोई अन्य सोढ़ी अंश का व्यक्ति यहाँ नहीं है।"

मक्खन शाह तत्काल उस मकान पर पहुँचा। तेग बहादुर उस वक्त भी समाधि लगाए हुए थे। मक्खन शाह उनकी समाधि समाप्त होने की प्रतीक्षा में बैठा रहा। कुछ देर बाद ही तेग बहादुर ने आँखें खोल दीं और मक्खन शाह की ओर देखा। मक्खन शाह ने माथा टेका और अन्य गद्दियों की भाँति तेग बहादुर के सामने भेंट स्वरूप 5 अशर्फियां रख दीं। तेग बहादुर मुस्कराए और बोले–

मक्खन शाह! अपना वचन भूल गया। खड़ा हो मेरी पीठ देख।

मक्खन शाह घबराकर एकदम से उठ खड़ा हुआ। उसने तेग बहादुर की पीठ देखी। वहाँ पीठ पर कीलों के धंसने के घाव बने हुए थे और उनसे खून बह रहा था। मक्खन एकदम से चौंक पड़ा। दूसरे ही क्षण वह स्वयं

पागलों की भाँति झुककर तेग बहादुर के चरणों में गिर पड़ा। तेग बहादुर ने उससे कहा—"खड़ा हो जा मक्खन शाह! जब तेरा जहाज डूब रहा था, तब तूने गुरु नानक की गुरु गद्दी पर 500 अशर्फियां भेंट करने का संकल्प लिया था। परन्तु तू अब 5 अशर्फियां दे रहा है?" तेग बहादुर की बात सुनकर मक्खन शाह उठकर जोर-जोर से चिल्लाकर लोगों को पुकारने लगा—

गुरु लाधो रे, गुरु लाधो रे, इधर आओ भक्तो! गुरु मिल गए...... गुरु मिल गए।

उसकी पुकार सुनकर लोग उसकी ओर दौड़ पड़े। जब मक्खन शाह ने पूरी घटना लोगों को सुनाई तो लोगों ने तेग बहादुर को गुरु स्वीकार कर लिया कि गुरु हरगोबिन्द का पुत्र तेग बहादुर ही गुरु गद्दी का वास्तविक उत्तराधिकारी है। गुरु हरिकृष्ण ने बकाले के इसी गुरु की ओर संकेत किया था। फिर तो जिसने सुना वही गुरु तेग बहादुर की ओर भागा चला आया। लोगों का विशाल जन-समूह वहाँ एकत्र हो गया। बकाला की सिक्ख संगत ने यह समाचार दूर-दूर तक भेज दिया। सिक्खों की भारी भीड़ बकाला में जुटने लगी। सारा नगर गुरु तेग बहादुर की जय-जयकार से गूंजने लगा। लोग गुरु तेग बहादुर के दर्शनों के लिए धक्का-मुक्की करने लगे। बकाला की सिक्ख संगत बड़ी मुश्किल से उन्हें नियंत्रित करने लगी।

इधर धीरमल और रामराय ने जब यह सुना तो उन्होंने क्रोध में पागल होकर अपने समर्थकों के साथ गुरु तेग बहादुर के स्थान पर धावा बोल दिया और सिक्खों ने जो भेंट वहाँ चढ़ाई थी उसे लूट-पाटकर ले गए। जब इस बात का पता मक्खन शाह को लगा तो उसने बहुत से सिक्खों और अपने हथियारबंद कर्मचारियों को एकत्र कर धीरमल और रामराय का मकान घेर लिया। लोगों ने उन दोनों को जमकर मारा-पीटा और नगर से बाहर खदेड़ दिया। वहाँ से गुरुग्रंथसाहिब को और लूटी हुई सारी दौलत को समेटा और गुरु तेग बहादुर के स्थान पर पहुँचा दिया। गुरु मिल जाने का समाचार जंगल में आग की तरह फैल गया था। दिल्ली की सिक्ख संगत गुरु हरिकृष्ण द्वारा

सौंपे गए पांच पैसे और नारियल लेकर बकाले आ पहुँचे। वहाँ 20.3.1665 ई० को परम्परा के अनुसार गुरु तेग बहादुर को तिलक करके गुरु गद्दी पर सुशोभित कर दिया गया ।

3. गुरु समान तीरथ नहिं कोई

कुछ दिन गुरु तेग बहादुर बकाले में ही रहे । फिर वे मक्खन शाह और अन्य महत्वपूर्ण सिक्खों के साथ एक जुलूस के रूप में अमृतसर पहुँच गए । लेकिन यहाँ पहुँचकर लोगों ने देखा कि लालच व्यक्ति को कितना नीचे गिरा देता है । लोगों ने धर्म को अपने स्वार्थ का साधन बना लिया था । उस समय हरिमन्दिर का स्वयंभू-पुजारी हरजी सोढ़ी था । गुरु तेग बहादुर को अमृतसर आया देखकर उसने हरिमन्दिर के द्वार बन्द करा दिए । उसे भय हुआ कि गुरु तेग बहादुर यहाँ मन्दिर पर अधिकार कर लेंगे और उसे यहाँ से जाना पड़ेगा । तब मन्दिर में प्रतिदिन आने वाले चढ़ावे की आय से उसे हाथ धोना पड़ेगा । गुरु तेग बहादुर के साथ जो सिक्ख संगत आई थी उसने बलपूर्वक हरिमन्दिर में प्रवेश करने का विचार गुरु जी के सम्मुख रखा। लेकिन गुरु जी ने बलपूर्वक भगवान के घर में प्रवेश करने से साफ इन्कार कर दिया और बोले–

मन मन्दिर तनु बेसु कलंधर । घट ही तीरथ नावा । ।
एक सबदु मेरे प्राण बसत है । बहुड़ जनमु न आवा । ।

मेरे मन मन्दिर में ही ईश्वर का निवास है । मेरा हृदय ही तीर्थों का नया स्थान है, जहाँ परमात्मा का वास है । ईश्वर की वाणी मेरे प्राणों में बसती है । जो कि बार-बार जन्म लेने पर भी प्राप्त नहीं होती । गुरु तेग बहादुर ने कहा कि संसारी तीर्थों से पहले गुरु तीर्थों पर जाना ही उचित है । यही विचार करके गुरु तेग बहादुर ने कुछ समय के लिए मन्दिर के बाहर एक बेरी के पेड़ के नीचे विश्राम किया और फिर वे बल्ला गांव चले गए। बल्ला गांव को गुरु तेग बहादुर ने 'बल्ला गुरु जी का गल्ला' कहकर पुकारा । यहाँ इन दिनों 'गुरुद्वारा कोठा साहिब' बना हुआ है और उस बेरी के नीचे, जहाँ बने एक चबूतरे पर गुरु तेग बहादुर जी बैठे थे, वहाँ 'गुरुद्वारा थड़ा साहिब' बना हुआ है ।

कुछ दिन बल्ला में रहने के बाद गुरु तेग बहादुर गोयंदवाल और खण्डूर साहिब होते हुए बकाले लौट आए । लेकिन बकाले में उनके ही परिवार वालों

ने, जो गुरु गद्दी पर अपना अधिकार मानते थे उन्हें तंग करना शुरू कर दिया। परन्तु वे शान्ति के साथ ईश्वरीय गुणों और गुरु नानक की वाणी का प्रवचन करते रहे। लेकिन जब उन्होंने गुरु तेग बहादुर को ज्यादा ही परेशान करना शुरू किया तो उन्होंने पूरे भारत की यात्रा करने का निश्चय किया। वे गुरु नानक के सन्देश को देश के इस छोर से उस छोर तक घर-घर पहुँचाने के लिए निकलना चाहते थे। ऐसा निश्चय करके वे अपने परिवार और विशेष समर्थकों के साथ देश भ्रमण के लिए निकल पड़े।

4. जुर्म की इन्तिहां

यह उस समय की बात है, जब दिल्ली की गद्दी पर मुगल बादशाह औरंगजेब बैठा हुआ था। गुरु हरिकृष्ण जी की मृत्यु के बाद उसने अपना असली चेहरा दिखाना शुरू कर दिया था। वह अत्यन्त अत्याचारी शासक था और कट्टर इस्लामी था। हिन्दुओं से वह सख्त घृणा करता था। उसने फतवा जारी किया था कि हिन्दुओं को ज्यादा से ज्यादा मुसलमान बनाया जाए। जो इन्कार करे उसे क़त्ल कर दिया जाए। वह हिन्दुस्तान में एक भी हिन्दू को नहीं देखना चाहता था।

उसने अपनी सेना और हाकिमों को कह रखा था कि हिन्दुओं को जितना तंग किया जाए, अच्छा है। सभी-मुसलमानों को लूट-खसूट करने, हिन्दू लड़कियों की इज़्ज़त लूटने, उन्हें तबाह करने, उनके मन्दिरों को तोड़ने और उनकी जगह मस्जिद खड़ी करने, उनके रीति-रिवाजों को नष्ट करने, उनके विद्यालयों और धर्म ग्रंथों को जलाने, उनसे अधिक से अधिक जजिया वसूल करने और उनके तीर्थस्थलों को नष्ट करने की पूरी-पूरी छूट उसने दे रखी थी। एक बार उसका विरोध करने वाले 2000 साधुओं को उसने सरे आम क़त्ल करवा दिया। अयोध्या, काशी, मथुरा और वृन्दावन के मन्दिरों को तुड़वाकर उसने मस्जिदें बनवा दी थीं। भारत के राजपूत और मराठे भी उनके सामने मुंह खोलने की हिम्मत नहीं कर पाते थे।

हिन्दुओं पर बेहद जुल्म ढाने के बाद औरंगजेब ने सिक्ख कौम को भी मिट्टी में मिला देने का मन बना लिया था। वह सिक्खों को हिन्दुओं का ही

एक हिस्सा समझता था। लेकिन सिक्खों की बहादुरी से भी वह परिचित था। वह उन्हें मुगल सल्तनत के लिए बहुत बड़ा खतरा समझता था। इसलिए वह जगह-जगह गुरुद्वारों को भी नष्ट कर रहा था। वह अत्यन्त जिद्दी और जालिम था। अपने जुल्मों के आगे उसने उन मुसलमान सूफी सन्तों को भी नहीं बख्शा था जो हिन्दू और मुसलमानों में कोई फर्क नहीं करते थे और सभी को प्रेम का पाठ पढ़ाया करते थे।

गुरु तेग बहादुर औरंगजेब के अत्याचारों को सुनते थे तो उनका खून खौल जाता था। हिन्दुओं का अपने देवी-देवताओं पर से विश्वास उठ गया था। क्योंकि वे उनकी रक्षा नहीं कर पाते थे। संसार में उन्हें कोई भी अपना सहायक दिखाई नहीं देता था। ऐसे समय में सबकी आँखें गुरु तेग बहादुर के ऊपर लगी हुई थी। गुरु तेग बहादुर ये भी देख रहे थे कि भारत के हिन्दू राजाओं में मुगल राज्य का विरोध करने की शक्ति नहीं थी। फिर भी वे उनमें हौंसला उत्पन्न करने का प्रयत्न कर रहे थे। बकाले से निकलकर गुरु तेग बहादुर कतलूर राज्य के भागोवाला गांव में पहुँचे। पर्वत शृंखलाओं के मध्य में बसा हुआ यह गांव, प्राकृतिक सौंदर्य का अद्‌भुत स्थान था। उन्होंने वहाँ के राजा से वह गांव खरीद लिया और उस स्थान पर आनन्दपुर नाम का नगर बसाया। इसी आनन्दपुर को बाद में गुरु गोबिन्द सिंह जी ने अपनी राजधानी बनाया था।

5. प्रचार मात्राएं

छह माह आनन्दपुर में रहकर गुरु तेगबहादुर अपने परिवार के साथ फिर से यात्रा पर निकल पड़े। वे दिल्ली, वृंदावन, मथुरा, आगरा, इटावा और कानपुर होते हुए प्रयाग जा पहुँचे। मार्ग में वे जहाँ भी रुके उनका भव्य स्वागत किया गया। वे गुरु नानक के उपदेशों को घर-घर तक पहुँचाने का महान् कार्य कर रहे थे। इससे उनका यश दूर-दूर तक फैलता चला जा रहा था। जिस समय वे प्रयाग पहुँचे, उस समय वहाँ कुम्भ का विशाल मेला लगा हुआ था। उस मेले का गुरु तेग बहादुर ने भरपूर लाभ उठाया और गुरु नानक के सन्देश को जन-जन तक पहुँचाया। प्रयाग के बाद वे पटना पहुँचे। माता गूजरी देवी उन दिनों गर्भवती थी। इसी कारण गुरु तेग बहादुर पटना में ही

रुक गये। पटना का एक सेठ उनसे बहुत प्रभावित हुआ। यहाँ सैकड़ों की संख्या में गुरु नानक के शिष्य भी रहते थे जो बहुत अमीर थे। उनके प्रयास से उस सेठ ने अपनी हवेली, जो कि आलमगंज में थी, गुरु तेग बहादुर को दे दी। गुरु तेग बहादुर इस हवेली में रह कर गुरु नानक की वाणी का प्रचार करने लगे।

कुछ दिन पटना में रहकर उन्होंने अपने परिवार के अन्य लोगों को अपनी पत्नी गूजरी देवी की देखभाल के लिए यहाँ छोड़ दिया और अपने साथ कुछ विश्वस्त शिष्यों को लेकर आसाम की ओर निकल पड़े। वे ढाका भी गए। यहाँ पर गुरु नानक देव भी आ चुके थे और उनके शिष्यों की सन्तानें यहाँ पर रहती थीं। उन्होंने गुरु तेग बहादुर का भव्य स्वागत किया। आसाम की यात्रा करते समय ही गुरु तेग बहादुर को पुत्र रत्न की प्राप्ति की सूचना मिल गई थी। उन्होंने अपने पुत्र का नाम गोबिन्द राय रखा। इस खुशी में आपने निर्धनों को बहुत सा दान दिया। आसाम में आपने गुवाहाटी, धोबड़ी, रंगमती, कमखशा, शिलांग आदि प्रसिद्ध नगरों की यात्रा की थी।

यहीं पर गुरु तेग बहादुर को पता चला कि औरंगजेब के साथ बिहार के राजा की जंग छिडी हुई है। कूच बिहार के राजा ने औरंगजेब के कुछ इलाकों पर जबरन कब्ज़ा जमाया हुआ था। यह उन्हें महाराज सवाई जयसिंह के पुत्र सवाई राजा राम सिंह से पता चला था। वह औरंगजेब की ओर से एक बड़ी सेना लेकर युद्ध करने वहाँ आया था। गुरु तेग बहादुर के वहाँ होने का समाचार पाकर वह सहायता के लिए उनके पास आया था। असम के राजा ने उनका भव्य स्वागत किया था। गुरु तेग बहादुर ने अपने प्रभाव से कूच बिहार के राजा और औरंगजेब के सेनापति सवाई राजा राम सिंह के मध्य समझौता करा दिया। कूच बिहार के राजा ने औरंगजेब का इलाका वापस कर दिया और उसे कर भी देने लगा। इस समाचार से औरंगजेब बहुत खुश हुआ।

असम का राजा निःसन्तान था। उसने गुरु तेग बहादुर की महानता सुन रखी थी। वह उनके पास पहुँचा और उनके चरण स्पर्श करके उसने अपना दुःख उन्हें कह सुनाया। गुरु तेग बहादुर ने राजा को आशीर्वाद देते हुए कहा—

राजन ! दुःखी न हो। शीघ्र ही तुम्हारे घर एक यशस्वी पुत्र जन्म लेगा।

गुरु तेग बहादुर का आशीर्वाद खाली नहीं गया। रानी ने कुछ समय बाद एक पुत्र को जन्म दिया। राजा ने उसका नाम रत्नराय रखा। बाद में बड़ा होने पर यह रत्नराय कई हाथी और पांच अनमोल रत्न लेकर आनन्दपुर साहिब गया था। लेकिन तब तक गुरु तेग बहादुर जी शहीद हो चुके थे। उसने वे सारी चीजें गुरु गोबिन्द सिंह को अर्पित की थीं। इसका उल्लेख गुरु गोबिन्द सिंह की पुस्तक ''विचित्र नाटक'' में मिलता है। चार वर्ष तक असम और बंगाल के नगरों का भ्रमण करने के बाद गुरु तेग बहादुर वापस पटना पहुँचे। उस समय तक गोबिन्द राय चार वर्ष के हो गए थे। अपने पुत्र को देखकर गुरु तेग बहादुर बहुत प्रसन्न हुए। उन्हें ऐसा लगा कि उनका वास्तविक उत्तराधिकारी उन्हें मिल गया है। बालक के चेहरे पर अपूर्व तेज था।

तभी उन्हें औरंगजेब के अत्याचारों के समाचार मिलने लगे। सारा देश उसके अत्याचारों से त्राहि-त्राहि कर रहा था। हिन्दुओं के मंदिरों को तोड़ा जा रहा था और उन पवित्र स्थानों पर मस्जिदें बनाई जा रही थीं। हिन्दू औरतों को मुसलमान जबरन उठा कर ले जाते थे और उन्हें भ्रष्ट करते थे। उनसे सामूहिक बलात्कार करते थे। तलवार के जोर पर उन्हें मुसलमान बनाया जा रहा था। पूरे देश में पंजाब और कश्मीर की दशा और भी ज्यादा दयनीय हो रही थी। वहाँ वे जिस सुन्दर स्त्री को देखते उठा ले जाते थे। हिन्दुओं के धर्म को अपवित्र किया जा रहा था।

6. पंजाब वापसी

गुरु तेग बहादुर हिन्दुओं और सिक्खों पर होने वाले इन अत्याचारों को सुन-सुनकर क्रोध और आवेश से कसमसाने लगे थे। पंजाब छोड़े हुए उन्हें कई वर्ष बीत गए थे। अन्त में कुछ सोचकर उन्होंने पंजाब जाने का निर्णय कर लिया। गुरु तेग बहादुर ने अपने परिवार को पटना में ही छोड़ दिया और अपने कुछ जांबाज सिक्ख योद्धाओं को साथ लेकर वे पंजाब चले गए। वस्तुतः उन्हें समाचार मिला था कि औरंगजेब के सिपाही लोगों से कहते घूम रहे थे कि तुम जिस गुरु के ऊपर इतना अभिमान करते हो, वह तो मुंह छिपाए बिहार, बंगाल और आसाम में घूम रहा है। वह तुम्हारी क्या सहायता करेगा।

गुरु तेग बहादुर अद्वितीय योद्धा थे । उन्हें यह बात कहाँ सहन होती । उन्हीं दिनों कश्मीर के कुछ पंडित आनन्दपुर साहिब पहुँचे । वहाँ गुरु तेग बहादुर पहले ही से मौजूद थे और उन्होंने अपने परिवार को भी पटना से वहाँ बुलवा लिया था । धीरे-धीरे वे अपनी शक्ति को बढ़ाते चले जा रहे थे और अवसर की प्रतीक्षा में थे । समय इसी तरह बीत रहा था । कश्मीरी पंडितों ने गुरु तेग बहादुर से अरदास की थी कि उन्हें औरंगजेब के अत्याचारों से बचाया जाए । गुरु तेग बहादुर की आन थी कि शरण में आए हुए व्यक्ति की जान देकर भी रक्षा की जाए । कहा भी है—

केहर मूछ भझंग मणि, सूरे शरण पयां ।

कृपण के घर लच्छमी, चारे देण मीयां ।।

शेर अपनी मूंछ, सांप अपनी मणि, कृपण अपने धन को और शूरवीर अपनी शरण में आए व्यक्ति को तब तक नहीं त्यागता जब तक वह अपना जीवन न दे दे ।

इसलिए गुरु तेग बहादुर ने कश्मीरी पंडितों को सुरक्षा का आश्वासन दे दिया था । वे अभी कुछ सोच ही रहे थे कि बाहर से उनका पुत्र गोबिन्द राय उधर आ निकला । पिता को चिन्तित देखकर उसने पूछा—

पिताश्री ! आप क्या विचार कर रहे हैं ? किस सोच में हैं ?

गुरु तेग बहादुर ने मुस्कराकर अपने पुत्र की ओर देखा और कहा—

पुत्तर ! तुम अभी बहुत छोटे हो । मैं जो विचार कर रहा हूँ, उसे तुम्हें बताने से क्या लाभ ?

आप मुझे बताएं तो पिताश्री ! मैं इतना छोटा नहीं हूँ जितना आप समझ रहे हैं ।

गोबिन्द राय ने निर्भयता के साथ सिर ऊँचा करके कहा ।

नौ वर्षीय बालक गोबिन्द राय का आत्मविश्वास देखकर वहाँ उपस्थित सभी लोग चकित रह गए । तब कुछ सोचकर गुरु तेग बहादुर ने कहा—

ये कश्मीर के पंडित यहाँ मुझसे सहायता मांगने आए हैं । कश्मीर के सूबेदार ने इन्हें एक माह का समय दिया है कि या तो इस्लाम धर्म अपना कर मुसलमान बन जाओ, नहीं तो सबको क़त्ल कर दिया जाएगा ।

फिर हमें इनकी रक्षा अवश्य करनी चाहिए पिताश्री !

गोबिन्द राय ने तत्काल उत्तर दिया ।

''ठीक है ।'' गुरु तेग बहादुर ने कहा—

किन्तु इसके लिए किसी महान् पुरुष के सिर की आवश्यकता है । उसका बलिदान ही इन्हें बचा सकता है ।

पिताश्री ! इसमें सोचने की क्या बात है ? आपसे बड़ा और महान् महापुरुष और कौन है ? इनकी सुरक्षा के लिए आप अपना शीश कुर्बान कर दीजिए ।

गोबिन्द राय ने बिना किसी झिझक के कहा ।

सभी लोग बालक गोबिन्द राय का मुँह देखते रह गए । गुरु तेग बहादुर मुस्कराए और बोले—

पुत्तर ! मुझे अपनी जान का कोई मोह नहीं है । किन्तु मैं सोचता हूँ कि मेरी शहादत के बाद तुम्हारा क्या होगा । तुम अभी बच्चे हो । औरंगजेब के क्रूर सैनिक पंजाब और आनन्दपुर साहिब में खूनी भेड़ियों की तरह टूट पड़ेंगे ।

गुरु तेग बहादुर की बात सुनकर गोबिन्द राय ने बड़े साहस के साथ कहा—

पिताश्री ! मेरा मोह छोड़ दीजिए । जिस प्रभु ने नौ माह तक माता के गर्भ में मेरी रक्षा की है, भला अब वह मेरी सहायता क्यों नहीं करेगा ? अब तो मैं वैसे भी नौ वर्ष का हो गया हूँ ।

गुरु तेग बहादुर अपने बेटे के मुंह से ऐसा उत्तर सुनकर गद्‌गद हो उठे । उन्होंने उठकर अपने बेटे को गले से लगा लिया और बोले—

शाबाश पुत्तर ! लो, संभालो हिन्दुस्तान और उसके धर्म को । मैं इन शरणागतों की रक्षा के लिए औरंगजेब के पास दिल्ली जाऊँगा ।

7. दिल्ली प्रस्थान

गुरु तेग बहादुर ने तत्काल आनन्दपुर साहिब में सारी व्यवस्था ठीक करके दिल्ली के लिए प्रस्थान कर दिया । गुरु जी के साथ केवल 10 सिक्ख थे । मार्ग में वे अपने प्रेमी एक पठान के यहाँ रुके । दिल्ली प्रस्थान के समय

गुरु तेग बहादुर ने सिक्ख संगत से कह दिया था कि यदि धर्म की रक्षा में वे शहीद हो जाएं तो वे तत्काल गोबिन्द राय को गुरु गद्दी सौंप दें। सिक्ख संगत ने उन्हें आश्वस्त कर दिया था।

औरंगजेब को पता चला तो उसने उन्हें गिरफ्तार करके लाने के लिए एक दल भेजा। लेकिन पठान ने उन्हें भगा दिया और कह दिया कि यहाँ गुरु तेग बहादुर नहीं हैं उसने उनके जाने के बाद गुरु जी की सहायता करनी चाही और औरंगजेब की सेना से लड़ने के लिए अपने आपको प्रस्तुत कर दिया। परन्तु गुरु तेग बहादुर ने यह कहकर उसे रोक दिया कि अभी समय अनुकूल नहीं है। कुछ इन्तजार करो। जल्दी ही वह समय आएगा जब औरंगजेब से दो-दो हाथ करने होंगे। औरंगजेब उन दिनों आगरा में था। गुरु तेग बहादुर मार्ग में लोगों को शान्त करते और उपदेश देते हुए आगरा जा पहुँचे थे। वे आगरा से पांच मील दूर एक बाग़ में पड़ाव डालकर ठहर गए।

औरंगजेब को उनके आने का पता चला तो उसने हसन अली नाम के एक सिपहसलार को एक सौ सशस्त्र सवारों के साथ वहाँ भेजा। उसने वहाँ जाकर बाग़ को घेर लिया। गुरु तेग बहादुर ने उसका कोई विरोध नहीं किया और अपने आपको गिरफ्तार करा दिया। वे शान्ति के साथ सारा काम निपटाना चाहते थे। व्यर्थ में औरंगजेब को क्रोधित नहीं करना चाहते थे। औरंगजेब ने उन्हें पांच सिक्खों के साथ आगरा के किले में क़ैद कर दिया। बाद में 1200 सवारों के साथ वह उन्हें दिल्ली ले आया और एक हवेली में उन्हें नजरबंद कर दिया। ऊपर से सौ सिपाहियों का सख्त पहरा बैठा दिया।

कुछ दिन बाद औरंगजेब ने काजियों के एक दल को गुरु तेग बहादुर के पास भेजा और कहलवाया कि अगर वे इस्लाम धर्म कुबूल करके मुसलमान बन जाएं तो सारा देश इस्लाम धर्म कबूल कर लेगा और फिर सभी तरह का झगड़ा खत्म हो जाएगा। सब जगह शान्ति स्थापित हो जाएगी। सारे हिन्दुस्तान में आपको सबसे बड़े पीर के रूप में माना जाएगा। खुद बादशाह औरंगजेब आपके हुक्म को बजाया करेगा। वह आपके सामने सिर

झुकाएगा। इस्लाम में आपको रहनुमा तथा पैग़म्बर का दर्जा प्राप्त होगा। गुरु तेग बहादुर ने काजियों से बड़ी शान्ति के साथ कहा कि वे अपने प्राण दे सकते हैं, लेकिन धर्म परिवर्तन नहीं कर सकते।

काजियों ने गुरु तेग बहादुर के पांचों शिष्यों को अलग-अलग बुलाकर तरह-तरह के प्रलोभन दिए, परन्तु वे टस से मस नहीं हुए। निराश होकर काजीगण वापस चले गए। उन्होंने औरंगजेब से कह दिया कि वे लोग किसी हालत में भी धर्म परिवर्तन के लिए तैयार नहीं है।

उनकी बात सुनकर औरंगजेब क्रोध में भर उठा। उसने लोहे का एक ऐसा पिंजरा बनवाया, जिसमें आदमी न तो खड़ा हो सकता था और न लेट सकता था। केवल बैठ सकता था। उसने गुरु तेग बहादुर को उसमें बन्द करके चांदनी चौंक में कोतवाली के निकट रखवाने का हुक्म जारी कर दिया और कहा कि उनके शिष्यों को सार्वजनिक रूप से ऐसी कड़ी सजा दी जाए कि लोगों की रूह कांप उठे। मौत के डर से वे जरूर इस्लाम धर्म कुबूल कर लेंगे।

8. गुरुद्वारा सीसगंज और रकाबगंज

उन दिनों चांदनी चौक में एक पक्की नहर थी। उस नहर के किनारे सज़ा देने के लिए एक ऊँचा चबूतरा बनवाया गया। गुरु तेग बहादुर को पिंजरे में बंद करके चबूतरे के सामने रखवा दिया गया ताकि वे अपनी आँखों के सामने औरंगजेब के कहर को देख सके। काजियों ने एक बार फिर गुरु तेग बहादुर के शिष्यों को समझाया, परन्तु वे नहीं माने। तब काजियों ने औरंगजेब के निर्देशानुसार पहले गुरु तेग बहादुर के एक शिष्य भाई मतीदास को सबके सामने आरे से चिरवा दिया और दूसरे शिष्य भाई सतीदास को रूईं में जिंदा लपेटकर जला दिया तथा तीसरे शिष्य भाई दयाला को गर्म पानी की देग में जीवित ही उबलवा दिया। गुरु तेग बहादुर ने दोनों जांबाज शिष्यों को मौत के भयानक पंजे में दम तोड़ते हुए अपनी आँखों के सामने देखा। उनकी आँखें अश्रुपूरित हो उठीं, परन्तु उन्होंने अपने मार्ग से एक बाल बराबर भी हटने का इरादा अपने मन में नहीं किया।

उस रात गुरु तेग बहादुर के शेष दो शिष्यों ने अपने गुरु से कहा—''गुरुदेव! हम लड़कर अपनी जान देने के लिए तैयार हैं, परन्तु इस तरह चुपचाप औरंगजेब के जुल्म को सहने के लिए तैयार नहीं हैं।'' गुरु तेग बहादुर ने उनसे कहा कि अगर वे यहाँ से किसी तरह भाग सकते हैं तो भाग जाएं। उस रात पहरेदारों के सो जाने पर गुरु तेग बहादुर के दो शिष्य भाई ऊदा और भाई चीमा, पहरेदारों की आँखों में धूल झोंककर आनन्दपुर की ओर भाग गए। अगले दिन काजियों ने गुरु तेग बहादुर को फिर से समझाया। लेकिन गुरु तेग बहादुर का वही उत्तर था, जो उन्होंने पहले दिन दिया था। वे अपने प्राण दे सकते थे, पर धर्म नहीं बदल सकते थे। दूसरे दिन कोतवाली के सामने, जहाँ आजकल गुरुद्वारा सीसगंज है, औरंगजेब के जल्लादों ने उन्हें पिंजरे से निकालकर तलवार के एक ही वार से क़त्ल कर दिया।

उनकी हत्या होते देखकर लोगों में भगदड़ मच गई। औरंगजेब के हुक्म से उनकी लाश को वहीं पड़ा रहने दिया गया ताकि नगर के हिन्दू इस भयानक दृश्य को देखकर भयभीत हो जाएं और इस्लाम धर्म कुबूल कर लें। उस भगदड़ का लाभ उठाकर दो सिक्ख तेजी से लपकते हुए वहाँ पहुँचे। उनमें से एक का नाम भाई जैता (जीवनदास) था। उसने गुरु तेग बहादुर का सिर उठाकर जल्दी से अपनी चादर में छिपा लिया और भीड़ की अफरा-तफरी का लाभ उठाकर वहाँ से निकल आया। वहाँ से निकलकर वह छिपता-छिपाता आनन्दपुर साहिब की ओर चल दिया।

उसी समय लक्खीशाह नाम का एक बंजारा लोगों की भीड़ छंटने पर वहाँ पहुँचा। उसने गुरु तेग बहादुर का धड़ उठा लिया और साथ लाई बैलगाड़ी में भरे भूसे में छिपा लिया। फिर वह गाड़ी को हांकता हुआ अपनी झोंपड़ी पर पहुँचा। उसने गुरु जी के धड़ को अपनी झोंपड़ी में रखा और सारा भूसा उस पर डाल दिया और आग लगी दी। उस स्थान पर इन दिनों गुरुद्वारा रकाबगंज बना हुआ है।

जैसे कि कल्याण संत अंक में लिखा है—

श्रीगुरु तेग बहादुर जी के अन्तिम स्थान का नाम ''सीसगंज'' है जोकि दिल्ली के चाँदनी चौक में विद्यमान है और आपके शरीर के संस्कार के स्थान का नाम रकाबगंज है, जोकि नई दिल्ली में विद्यमान है।

—सिक्ख गुरु (पृ० 565)

उधर भाई जीवन दास छिपता-छिपाता आनन्दपुर साहिब पहुँचा और उसने बड़े भारी मन से गुरु तेग बहादुर का सीस गोबिन्दराय को सौंप दिया। गोबिन्द राय को सिक्ख संगत ने उसी दिन विधिवत् गुरु गद्दी सौंप दी और गुरु तेग बहादुर का पूर्ण विधि-विधान के साथ दाह-संस्कार कर दिया। औरंगजेब की इस क्रूरता को देखकर सारे देश में क्रोध की ज्वालाएं भड़क उठीं। लेकिन गुरु गोबिन्द सिंह ने उस समय किसी तरह लोगों को शान्त किया और सब्र से काम लेने को कहा। उन्होंने जिस जगह गुरु तेग बहादुर का अंतिम संस्कार किया था उस स्थान पर एक भव्य गुरुद्वारा बनाने की आज्ञा प्रसारित कर दी।

इस प्रकार 11.11.1675 ई० को दिल्ली में गुरु तेग बहादुर ने हिन्दू धर्म की रक्षा के लिए अपने प्राणों का हँसते-हँसते बलिदान कर दिया। किन्तु जालिम बादशाह औरंगजेब की खूनी प्यास फिर भी नहीं बुझी।

9. साहित्यसृजन

गुरु तेग बहादुर ने 59 शब्द एवं 56 श्लोक की रचना की थी। उनकी इस वाणी को गुरु गोबिन्द सिंह ने महला-9 में अंकित किया है। जैसे—

रामु गइओ रावनु गइओ जा कउ बहु परवारु।
कहु नाम थिरु कुछ नही। सुपने जिउ संसारु।। श्लोक 50 पृ० 1428
चिन्ता ता की कीजिऐ जो अनहोनी होइ।
इहु मारगु संसार को नानक थिरु नहीं कोइ।। श्लोक 51 पु० 1428

10. गुरु तेग बहादुर जी की वाणी :—

साधो मन का मानु तिआगउ।।
कामु क्रोधु संगति दूरजन की ता ते अहिनिसि भागउ।।1।। रहाउ।।
सुखु दुखु दोनो सम करि जानै अउरु मानु अपमाना।।
हरख सोग ते रहै अतीता तिनि जगि ततु पछाना।।1।।

उसतति निंदा दोऊ तिआगै खोजै पदु निर बाना ।।
जन नानक इहु खेलु कठनु है किनहुं गुरमखि जाना ।।2।।

—रागु गउड़ी महला 9 पृष्ठ 219

हे संतो ! मन का अहंकार त्याग दीजिए। काम, क्रोध, दुष्टों की संगत से सदा दूर रहो। जो व्यक्ति सुख, दुःख, सम्मान एवं अपमान में समान रहता है और वह हर्ष एवं शोक से भी निर्लेप रहता है। ऐसे व्यक्तित्व ने मूल तत्व को पहचान लिया है जिसने स्तुति, निन्दा दोनों को त्याग दिया है और वह मुक्ति के मार्ग का पथिक बन गया है। गुरु तेग बहादुर जी गुरु नानक देव जी के अनुसार कहते हैं कि यह कार्य अत्यंत कठिन है। क्योंकि इसको कोई नहीं जान सकता है। सच्चे गुरु का भक्त केवल गुरु के उपदेश से ही इसे जान सकता है अन्यथा नहीं।

हरि बिनु तेरो को न सहाई ।।
का की मात पिता सुत बनिता को काहू को भाई ।।1।। रहाउ ।।
धनु धरनी अरु संपत्ति सगरी जो मानिओ अपनाई ।।
तन छूटै कछु संगि न चालै कहा ताहि लपटाई ।।1।।
दीन दइआल सदा दुख भंजन ता सिउ रुचि न बढ़ाई ।।
नानक कहत जगत सभ मिथिआ जिउ सुपना रैनाई ।।2।।

--रागु सारंग महला 9 पृष्ठ 1231

हे मन ! परमात्मा के बिना तेरा कोई भी सहायक नहीं है क्योंकि वह तेरी प्रत्येक अवस्था में सहायता करता है। कोई किसी के माता-पिता, पुत्र, स्त्री, भाई आदि संबंधी नहीं हैं क्योंकि ये संबंध क्षणिक एवं स्वार्थपूर्ण हैं। धन, पृथ्वी और सारी सम्पत्ति जिसे तू अपनी मान कर बैठा है मृत्यु के पश्चात् इन में से कुछ भी साथ नहीं जाता है। तेरे साथ केवल परमात्मा का लिया गया नाम और हाथ से दिया हुआ दान ही जायेगा। परन्तु फिर भी तू अज्ञानवश इन क्षणिक वस्तुओं से लिपटा हुआ है। परन्तु तूने दीनदयाल, दुःख भंजक परमात्मा से प्रेम नहीं बढ़ाया है। नानक श्री गुरु तेगबहादुर के माध्यम से संसार को उपदेश देते हुए कहते हैं कि सारा संसार एक रात के स्वप्न की भाँति

मिथ्या, नश्वर और क्षणभंगुर है । केवल एक परमात्मा ही सत्य है । जैसे कबीर जी लिखते हैं--

मन फूला फूला फिरै जगत में कैसा नाता रे ।
माता कहे यह पुत्र हमारा बहन कहे बिर मेरा ।
भाई कहे यह भुजा हमारी नारि कहै नर मेरा ।
पेट पकरि के माता रोवै बांहि पकरि के भाई ।
लपटि भापटि तिरिया रोवै हंस अकेला जाई ।
जब लग जीवै माता रोवै, बहिन रोवे दस मासा ।
तेरह दिन तक तिरिया रोवै, फेर करै घर बासा ।
चार गजी चरगजी मंगाया, चढ़ा काठ की घोड़ी ।
चारों कोने आग लगाया, फूंक दियो जस होरी ।
हाड़ जरै जस लाकड़ी को केस जरै जस घास ।
सोना जैसी काया जर गई कोई न आयो पासा ।
घर की तिरिया ढूंढण लागी ढूंढि फिरी चहं देसा ।
कहै कबीरा सुना भाई साधो छोड़ो जग की आसा ।।

गुरु गोबिन्द सिंह जी

22-12-1666 ई० - 7-10-1708 ई० (41 वर्ष 9 महीने 15 दिन)

10. गुरु गोबिन्द सिंह

विश्व इतिहास में ऐसा कोई भी उदाहरण ढूंढने से नहीं मिलता, जिसमें एक नौ वर्ष के बालक ने अपने पिता को धर्म की रक्षा के लिए बलिदान होने के लिए कहा हो । गुरु गोबिन्द सिंह वे बालक थे, जिन्होंने अपने पिता गुरु तेग बहादुर से ऐसा कहा था । मुगल बादशाह औरंगजेब बड़ा जालिम बादशाह था । उसने पूरे हिन्दुस्तान में हिन्दुओं का सफाया करने का हुक्म जारी कर दिया था । सिक्खों के नवें गुरु तेग बहादुर अपने नाम के अनुसार ही एक बहादुर महापुरुष थे । यद्यपि वे शान्ति के पुजारी थे, किन्तु हिन्दू धर्म की रक्षा के लिए उन्होंने अपना शीश कटाने में किंचित भी विलम्ब नहीं किया था ।

1. जन्म और बाल्यकाल

गुरु तेग बहादुर के पुत्र गुरु गोबिन्द सिंह सिक्खों के दसवें और अंतिम गुरु थे । उनका जन्म 22.12.1666 ई० में, पटना में हुआ था । गुरु गोबिन्द सिंह की माता का नाम गुजरी देवी था । जहाँ पर आपका जन्म हुआ वहाँ एक ओर मस्जिद थी और एक ओर मन्दिर था । स्वाभाविक है कि गुरु जी के कानों में संगत, गुरुवाणी, कीर्तन के साथ-साथ मंदिर की आरती, घंटियों की आवाज़ें भी पड़ी होंगी । यह देव संयोग ही था । इसलिए उनका मूल मंत्र था—

मानस की जात सबै एक पहचानबो ।

इनके बचपन का नाम गोबिन्द राय था । लेकिन सिक्ख संगत में शेरों की भाँति जोश का जज्बा भरने के लिए उन्होंने अपने नाम के आगे 'सिंह' लगाना आरम्भ किया था और समस्त सिक्खों को भी ऐसा करने के लिए कहा । उन्होंने प्रत्येक सिक्ख के लिए कड़ा, कच्छा, कृपाण, कंघी और केश पांच ककार धारण करने का नियम बनाया था और सिक्ख पंथ को खालसा पंथ का नाम दिया था । उन्होंने प्रत्येक सिक्ख से संकल्प कराया था कि धर्म की रक्षा के लिए वे अपना शीश तक न्योछावर करने से पीछे नहीं हटेंगे ।

गुरु तेग बहादुर की शहादत के बाद सारा हिन्दुस्तान आक्रोश की आग से धधक उठा था । हिन्दुओं के मन में मुगल सल्तनत के प्रति गहरी घृणा भर गई थी । स्थान-स्थान पर औरंगजेब के नाम पर थू-थू होने लगी थी । शासन का जबरदस्त विरोध आरम्भ हो गया था । गुरु गोबिन्द सिंह बचपन से ही

ज्ञान और शक्ति के महापुंज के रूप में उभरे थे । युवा होते ही उन्होंने प्रत्येक सिक्ख के मन में यह बात अच्छी प्रकार बैठा दी थी कि एक सिक्ख सवा लाख मुगल सैनिकों के बराबर होता है । उन्होंने कहा था–

सुरा सो पहचानिए जो लरै दीन के हेत ।

पुरजा-पुरजा कट मरै कबहुं न छाडै खेत ।।

शूरवीर वही है जो दीनों के हित के लिए लड़ता है । युद्ध भूमि में उसकी रक्षा करते हुए चाहे उसका अंग-अंग कट कर गिर जाए, फिर भी वह युद्ध भूमि छोड़कर नहीं भागता ।

जिस समय गुरु गोबिन्द का जन्म हुआ था उनके पिता गुरु तेग बहादुर असम और बंगाल की यात्रा पर थे । अनेक तीर्थों और जनसभाओं में गुरु नानक के सन्देश को प्रसारित करते हुए जब वे पटना पहुँचे, तब गोबिन्द राय चार वर्ष के हो चुके थे । बचपन से ही गोबिन्द राय अन्य सभी बालकों से अलग प्रवृत्ति के बालक थे । जिस आयु में बालक खिलौनों के साथ खेलते हैं उसमें वह तलवार, कटार और धनुषबाण से खेला करते थे । बालकों के दो दल बनाकर वे शत्रु सेना से युद्ध करने का खेल खेला करते थे । बाण, भाला और तलवार चलाने में उन्होंने बचपन से ही दक्षता प्राप्त करनी आरम्भ कर दी थी ।

जिस हवेली में वे रहते थे, उसमें एक कुआं था । उस पर आस-पड़ोस की स्त्रियाँ जल भरने के लिए अपने-अपने घड़े लेकर आया करती थी । बालक गोबिन्द राय को उन्हें तंग करने में बड़ा मजा आया करता था । वे तीर-कमान लेकर छिपकर बैठ जाते और जब स्त्रियां घड़ा भरकर सिर पर रखकर जाने लगतीं तो वे तीर का अचूक निशाना लगाकार उनके घड़े फोड़ दिया करते थे । उनकी इस शैतानी से तंग आकर उन स्त्रियों ने जब उनकी शिकायत गूजरी देवी से की तो उन्होंने उन सभी को मिट्टी के घड़ों के स्थान पर पीतल के घड़े दिलवा दिए । लेकिन बालक गोविन्द उन्हें भी अपने पैने तीरों से तोड़ने का प्रयास करते । तब एक दिन माता गूजरी ने बालक गोबिन्द राय को समझाया तो उन्होंने शैतानी छोड़ दी और फिर कभी उन्हें तंग नहीं किया । जब बालक गोबिन्द राय विद्या प्राप्ति के योग्य हुए तो उन्हें संस्कृत, अरबी, फारसी और गुरमुखी भाषा की शिक्षा दी गई । जल्दी ही उन्होंने इन

सभी भाषाओं में निपुणता प्राप्त कर दी। उनकी यह शिक्षा पटना और आनन्दपुर साहिब में योग्य शिक्षकों की देखरेख में हुई थी।

2. चमत्कारी बालक

पटना में गोबिन्द राय जब तक रहे, तब तक लोग उन्हें चमत्कारी बालक ही समझते रहे। पटियाला राज्य के गुड़ाक गाँव में भीखनशाह नाम का एक फकीर रहता था। वह बड़ा पहुँचा हुआ फकीर था। एक रात स्वप्न में उसे एहसास हुआ कि पटना में किसी पैग़म्बर का अवतार हुआ है, जिसमें ईश्वरीय शक्तियां भरी हुई हैं। ऐसा एहसास होते ही वह पटना की ओर चल दिया और मार्ग में अनेक कठिनाइयों से जूझता हुआ वह एक दिन पटना जा पहुँचा। वहाँ उसने माता गूजरी से प्रार्थना करके गोबिन्द राय के दर्शन किए और उसे आजमाने के लिए पानी से भरे दो कटोरे उसके सामने रख दिए।

फकीर ने सोच रखा था कि इनमें से एक कटोरा हिन्दू धर्म का है और दूसरा इस्लाम धर्म का। वे यह जानना चाहते थे कि यह बालक बड़ा होकर किस धर्म का पक्ष लेगा। लेकिन भीखनशाह ने आश्चर्य से भरकर देखा कि बालक गोबिन्द राय ने दोनों कटोरों को स्पर्श किया और फिर लुढ़का दिया। वे तत्काल समझ गए कि बड़ा होकर यह बालक किसी धर्म से भी पक्षपात नहीं करेगा। वह सभी को अपना बनाकर चलेगा। लेकिन यदि दोनों धर्मों में से किसी धर्म में भी अधर्म का बोलबाला होगा तो वह उसे ठोकर मार देगा। भीखनशाह फकीर बालक गोबिन्द राय के चरणों में अपना शीश झुकाकर बोले–

> **माता! तेरा यह बालक कोई साधारण बालक नहीं है। बड़ा होकर यह महान् योद्धा सिद्ध होगा और अपनी कौम का सिरमौर बनेगा। दीन-दुःखियों का सहायक होगा और अत्याचारियों का विनाश करेगा। इस बालक में परमात्मा का अंश विद्यमान है।**

माता गूजरी ने भीखनशाह फकीर को धन-धान्य देकर विदा किया। पटना में एक राजा फतेहचन्द रहता था। उसके पास किसी चीज की कमी नहीं थी। किन्तु उसकी कोई सन्तान नहीं थी। अपने किसी हितैषी के कहने पर वे माता गूजरी के पास गए और उनसे प्रार्थना करके बालक गोबिन्द राय के दर्शन किए। बालक गोबिन्द राय को राजा फतहचन्द की पत्नी ने प्यार से अपने पास बुलाया तो वे उनकी गोद में जाकर बैठ गए। राजा फतेहचन्द की

पत्नी को ऐसा लगा कि जैसे पुत्र रत्न की कामना उनकी पूरी हो गई है । वे बालक गोबिन्द राय को खूब दुलार करके घर लौटीं ।

3. राम बने गोबिन्द

कुछ दिन बाद उन्हें पता चला कि वे गर्भवती हो गई हैं और उचित समय पर उन्होंने एक पुत्र को जन्म दिया । उनकी बंधी कोख खुल गई थी । फिर तो एक-एक करके उन्होंने चार पुत्रों को और जन्म दिया । जब गुरु गोबिन्द सिंह आनन्दपुर साहिब चले गए थे, तब भी वे उनके दर्शनों को जाते रहे । उनसे राजा फतेहचन्द और उनकी रानी का मोह बना ही रहा ।

एक बार माता गूजरी ने बालक गोबिन्द राय के हाथों में रत्नजड़ित सोने के दो कंगन डाल दिए । बालक गोबिन्द राय को उन कंगनों को पहनने में बड़ी असुविधा हो रही थी । उन्होंने बालकों के साथ खेलते हुए अपने हाथ का एक कंगन उतारकर गंगा में फेंक दिया । बालकों ने इस बात की शिकायत माता गूजरी से जाकर की तो माता ने गोबिन्द राय से उस कंगन के बारे में पूछा कि उसने वह कंगन कहा फेंका था । बालक गोबिन्द राय माता गूजरी को गंगा किनारे ले गए और अपने दूसरे हाथ का कंगन उतारकर उसे गंगा में फेंकते हुए बोले–

उस स्थान पर मैंने कंगन फेंका था ।

बालक की इस हरकत को देख कर माता गूजरी नाराज होने लगीं तो बालक गोबिन्द राय ने उत्तर दिया –

माते ! माया के इन बन्धनों में मुझे मत बांधो । यह न तो मेरी है और न ही इस संसार का इससे कोई भला होने वाला है ।

छोटे से बालक के मुँह से ऐसी बातें सुनकर माता गूजरी देवी हैरानी से उसका मुंह देखने लगीं । उन्होंने समझ लिया कि उनकी कोख से उत्पन्न होने वाला यह बालक कोई साधारण बालक नहीं है । इसी तरह की न जाने कितनी बातें और प्रसंग बालक गोबिन्द राय के बचपन से जुड़े हैं । एक बार की बात है कि पटना के एक राम भक्त पंडित शिवदत्त प्रतिदिन गंगा स्नान के लिए जाया करते थे । जिस घाट पर वे जाया करते थे, उसी पर बालक गोबिन्द राय भी बच्चों के साथ खेलने और स्नान करने जाया करते थे । पंडित शिवदत्त जी ने बालक गोबिन्द राय के चमत्कारों के बारे में सुन रखा था । एक बार उन्होंने

बालक गोबिन्द राय को रोककर कहा कि क्या वे उन्हें श्रीराम के साक्षात् दर्शन करा सकते हैं?

गोबिन्द राय ने मुस्कुराकर पंडित जी से आँखें बंद करके अपने इष्ट का ध्यान करने के लिए कहा। पंडित जी जैसे ही ध्यानमग्न हुए, उन्हें ऐसा लगा कि गोबिन्द राय के रूप में स्वयं उनके इष्ट श्रीराम उनके सामने उपस्थित हैं। पंडित जी ने आँखें खोलीं और वे बालक गोबिन्द राय के चरणों में झुकने लगे। परन्तु बालक गोबिन्द राय ने उन्हें ऐसा करने से मना किया और बोले—

पंडित जी! श्रीराम तो आपके मन में बसे हैं। इसीलिए हर जीव में, जड़-चेतन में आपको श्रीराम ही दिखाई देंगे। वे कहाँ नहीं है।

बालक गोबिन्द राय की सारगर्भित बात सुनकर पंडित जी उसी दिन से उनके भक्त हो गए। बालक गोबिन्द राय ने उनकी सीमित दृष्टि को व्यापक कर दिया था। अब उन्हें हर जीव-जन्तु में, हर जड़-चेतन में श्रीराम का स्वरूप ही दिखाई देने लगा था। उन्हें लगा कि यह बालक कोई सामान्य बालक नहीं है। यह ईश्वर का प्रतिरूप है जो जनकल्याण के लिए धरती पर आया है। गुरु तेग बहादुर जब पंजाब के लोगों की पुकार सुनकर आनन्दपुर साहिब आए तब उन्होंने पटना से अपने परिवार को भी बुला लिया था और गोबिन्द राय की शिक्षा-दीक्षा का पूरा प्रबन्ध कर दिया था। मुसलमानों के अत्याचार और आतंक से त्रस्त एक बार बहुत से कश्मीरी पंडित गुरु तेगबहादुर के पास आये और निवेदन किया—

महाराज अब तो आतंक और अत्याचार पराकाष्ठा को पार कर गया है। धन लूटा जा रहा है, धर्म भ्रष्ट किया जा रहा है और दिन-दहाड़े बहू बेटियों का सम्मान नष्ट किया जा रहा है, हम सब आपकी शरण में आये हैं। कृपया हमारी रक्षा कीजिये।

गुरु तेगबहादुर आगंतुकों की करुण कथा सुनकर गंभीर होकर कुछ सोचने लगे। कुछ क्षण ध्यानावस्थित रहकर उन्होंने आँखें खोलीं और बोले—

अत्याचार का अंत बलिदान द्वारा होता है। समय किसी महान् व्यक्ति का बलिदान चाहता है। यदि कोई महान् पुरुष देश धर्म की रक्षा में अपना बलिदान दे दे, तो निश्चय ही देश में जागरण आ जाये और बलिदान की परंपरा चल पड़े। बलिदान की धारा अनाचार को ठंडा कर देती है।

उपाय सुनकर सभी लोग मौन होकर असमंजस में पड़ गये। सोचने लगे–ऐसा महापुरुष कौन हो सकता है, जिसका उत्सर्ग देश-धर्म की रक्षा में हेतु बन सकता है? धर्म की रक्षा के लिए तो कोई सच्चा धर्मात्मा ही बलिवेदी का पुण्य-पुष्प बनना चाहिए। गुरु तेगबहादुर ध्यान मगन थे और अन्य लोग एक-दूसरे का मुँह देख रहे थे। तभी गुरु तेगबहादुर के 9 वर्षीय पुत्र गोबिन्द राय जो उस समय पिता की सेवा में उपस्थित थे, खड़े हुए और हाथ जोड़कर बोले–

पूज्य पिताजी! इस समय आपसे बड़ा महापुरुष और कौन है? जो अपना बलिदान देकर देश धर्म की रक्षा कर सके?

बालक गोबिन्द राय की बात सुनकर सभी लोग स्तंभित रह गये, किंतु गुरु तेगबहादुर गद्गद् हो उठे। उन्होंने पुत्र को उठाकर गले लगा लिया और बोले–

गोबिन्द! मैं तुझ-सा पुत्र पाकर आज धन्य हो गया। तूने मुझे प्रकाश दिया, पथ-निर्देश दिया। दूसरों को बलिदान का मार्ग बतलाकर स्वयं एक ओर बैठा रहना विडंबना है। समय किसी महात्मा का बलिदान चाहता है।

यह कहने के साथ ही मुझे आत्मोत्सर्ग के लिए प्रस्तुत हो जाना चाहिए था। दूसरे को उपदेश देने से पूर्व स्वयं उस पर आचरण करना चाहिए। तुमने मेरा प्रबोधन किया और मुझे मेरे कर्तव्य का बोध कराया। निश्चय ही तेरा पिता होकर मैं आज धन्य हो गया। इतना कहकर वे उठे और आगंतुकों से बोले– "दिल्ली के बादशाह औरंगजेब से जाकर कह दो कि यदि हमारा गुरु मुसलमान हो जाए तो हम सब मुसलमान हो जाएंगे।" कश्मीरी पंडित उन्हें प्रणाम करके दिल्ली की ओर रवाना हो गये।

गुरु तेग बहादुर का यह उपाय शत-प्रतिशत उनके प्राणों के लिए संकट था, परन्तु साथ ही यह भी निश्चित था कि औरंगजेब हज़ारों-लाखों हिन्दुओं को सरलता से मुसलमान बनाने के लिए उन पर अत्याचार करना छोड़कर अपने प्रयत्न गुरु तेग बहादुर तक ही केंन्द्रित कर देगा। इस प्रकार अपने को संकट में डालकर दूसरों की रक्षा करने का जो उदाहरण गुरु तेगबहादुर ने उपस्थित किया वह निश्चय ही अनुकरणीय है।

पुत्र की एक ही बात से उसके गुणों की परख करके गुरु तेगबहादुर ने

अपनी गद्दी उसको सौंप दी और चुने हुए पाँच शिष्यों को लेकर स्थान-स्थान पर लोगों को धर्म का उपदेश देते और उसकी रक्षा में मर मिटने का संदेश देते हुए स्वयं ही दिल्ली जा पहुँचे। औरंगजेब को उनकी चुनौती पहले ही मिल चुकी थी और अब उनके दिल्ली आने का समाचार भी मिल गया। वह बड़ा खुश हुआ। सोचा, शिकार आप से आप पिंजड़े में आ गया है।

प्रायः लोग मनुष्य के मानसिक अस्तित्व को अपने से तोलने की भूल कर बैठते हैं और उसे अपने जैसा ही मानने लगते हैं। औरंगजेब का विचार था कोई बड़ा लालच अथवा बड़ा भय दिखलाने से गुरु तेगबहादुर विचलित हो जायेंगे। तब उनको धर्मभ्रष्ट कर लाखों-करोड़ों हिन्दुओं को आसानी से मुसलमान बना लिया जायेगा। किन्तु वह क्या जानता था कि जिस महापुरुष ने अकाल पुरुष से तादात्म्य स्थापित कर लिया है, जिसने धर्म और जाति की रक्षा के लिए खुशी-खुशी सिर में कफन बांध लिया है और जो तीर्थ यात्रा की भावना से बलिदान के पथ पर चल दिया हो, उसे अपने ध्येय और सिद्धान्त से पतित नहीं किया जा सकता। दिल्ली जाकर गुरु तेगबहादुर ने अपना आसन जमा दिया और धर्म प्रचार करने लगे। औरंगजेब एक भद्र पुरुष की भाषा लेकर उनसे मिला और बोला—

सुना है, आप बड़े दानिश्ता और पहुँचे हुए फ़कीर हैं। मैं आपका मुरीद होना चाहता हूँ। अगर आप मुसलमान होकर इस्लाम पर ईमान ले आयें, तो न सिर्फ मैं बल्कि मेरी सारी मिल्लत आपकी मुरीद हो जाए और तब आप हिंदुस्तान की सल्तनत उसके तख्त और ताज के मालिक माने जाने लगेंगे।

अपनी तराजू से तोलने के कारण औरंगजेब समझ रहा था कि गुरु तेगबहादुर इतनी इज़्ज़त और इतने बड़े पद के लालच में आये बिना न रह सकेंगे। राज्य के लिए अपने बहुत से भाइयों को मारकर पिता को क़ैदखाने में डाल देने वाला औरंगजेब इस बात की कल्पना भी नहीं कर सकता था कि अध्यात्म-धन से धनी महात्माओं के लिए उसकी एक तुच्छ-सी सल्तनत क्या, त्रिलोकी का राज्य भी तृण के समान होता है। जो देश-जाति की रक्षा में अपना समर्पण कर चुका है, उसको और किन्हीं बातों से क्या सरोकार?

गुरु तेगबहादुर ने औरंगजेब का कथन सुना, जानते तो थे ही कि वह कहाँ से बोल रहा है। उसके इस प्रस्ताव के पीछे कौन सा भाव छिपा हुआ है? वह मुस्कराये और बोले—

बादशाह ! मुझे लोभ दिखलाने का प्रयत्न न कर । मैं तो उस एक अकाल पुरुष की आज्ञा का वशवर्ती बंदा हूँ । तू यदि वास्तव में मुरीद होना चाहता है तो ताज और तख्त पर लात माकर फकीरी ले ले और मेरे पास चला आ ।

गुरु की यथार्थ अभिव्यक्ति सुनकर औरंगजेब का नकली रंग उत्तर गया और वह अपने असली रूप में आकर उसी के अनुसार आचरण करने लगा । उसने गुरु के साथ आये शिष्यों को असहनीय यातना देकर मुसलमान बनाना चाहा, किन्तु वे वज्रविश्वासी रंचमात्र भी विचलित न हुए । अंत में उसने गुरु तेगबहादुर को बुलवाया और उसके सामने ही उनके प्यारे शिष्य मतिदास को आरे से चिरवाकर दो टुकड़े करा दिया और भाई सतिदास को रूईं में जिन्दा लपेटकर आग लगा दी गई । भाई दयालदास को तेल के खौलते कड़ाहे में डलवाकर उबलवा दिया और बोला—''अगर अब भी आप मेरी बात न मानेंगे तो आपकी भी यही हालत बनवा दूँगा ।''

गुरु तेगबहादुर ने सब कुछ समभाव से देखा, सुना और उत्तर दिया—''औरंगजेब ! यह कोई नई बात नहीं है । यह नश्वर शरीर आज तक किसी का नहीं हुआ । किसी न किसी बहाने इसे नष्ट तो होना ही है । धर्म के नाम पर बलिदान हो जाने से बढ़कर इस मानव-मिट्टी का और क्या महत्व हो सकता है ? तूने इन तीनों को मारकर केवल अपने ऊपर कलंक ही लिया है । आने वाली मानव-संतानें जहाँ तेरी इस अमानवता पर थूकेंगी, वहाँ इन धर्म-वीरों के बलिदान के प्रति नत-मस्तक होंगी । तू न जाने किस बात पर गर्व करता है ? तेरे जैसे न जाने कितने संसार में आये और अपना इतिहास बिगाड़कर चले गये । यदि तू मुझे भी इनके पुण्य-पथ पर भेजना चाहता है तो जल्दी कर । यह आत्मा अजर-अमर है, तू इसका बाल भी बांका नहीं कर सकता ।

4. राय बने तब सिंह

गुरु का गंभीर वचन सुनकर औरंगजेब बौखला उठा । उसने तुरंत ही चौराहे पर उनका सिर काटने की आज्ञा दे दी । जिसका पालन चाँदनी चौक के बीचों-बीच 11.11.1675 ई० को दिन के खुले उजाले में किया गया । उस समय लाखों लोग उस महान् बलिदान को देखने के लिए इकट्ठे हो गये थे । गुरु का सिर शरीर से अलग होते ही जहाँ अत्याचार के पक्षपातियों के

हृदय में एक दहशत बैठ गई, उनकी आँखों और आत्मा में एक अंधेरा छा गया, वहाँ धर्म पक्ष वालों को एक आलोक मिला, उनकी आँखों में आंसू और आत्मा में साहस का स्रोत लहरा उठा। इसी अंधकार और जन-कोलाहल के बीच भाई जैता (जीवनदास) ने गुरु का सिर उठा लिया और आनन्दपुर की ओर चल दिये। बस, इसी बलिदान की पृष्ठभूमि से गुरु गोबिन्द सिंह का महान् चरित्र आरम्भ होता है।

गुरु गोबिन्द सिंह को पिता का सिर सत्य की साक्षी के समान मिला और साथ ही यह समाचार भी कि औरंगजेब ने दिल्ली के समस्त संभ्रांत नागरिकों के अनुरोध करने पर भी गुरु का शरीर देने से इनकार कर दिया और कहा कि ऐसे हठीले व्यक्ति की लाश न दफनाई जाएगी और न जलाई जायेगी। यह यों ही चौराहे पर पड़ी-पड़ी सड़ने के लिए छोड़ दी जायेगी, जिसे कौवे, गीध और कुत्ते नोंच-नोंच कर खायेंगे, जिससे लोगों को नसीहत होगी कि बादशाह की बात न मानने वालों की यह हालत होती है। धीर पिता के वीर पुत्र गोबिन्द सिंह सिर और समाचार पाकर उल्लास और उत्साह से भर उठे और दिल्ली की ओर हाथ उठाकर बोले—

ऐ अनीति और अत्याचार की तस्वीर और धर्म के द्वेषी सावधान हो जा। वक्त की मांग पूरी हो चुकी है। एक महान् पुरुष ने बलिदान दे दिया। अत्याचारों का घड़ा भर चुका है और अब देश-धर्म के उद्धार का समय आ गया है। गुरु का एक बलिदान लाख-लाख बलिदान बनकर फलेगा। उनके रक्त की एक-एक बूंद एक-एक अंगार बनकर अत्याचार और अत्याचारी दोनों को जला डालेगी।

इसके पश्चात् वह नौ वर्ष का बालयोद्धा गुरु की मृत्यु से उदास खड़े सैकड़ों लोगों की ओर उन्मुख होकर बोला—

यह दुःख नहीं, हर्ष का दिन है। आज गुरु के बलिदान ने हमें शिक्षा दी है कि हम उनके पद चिह्नों पर चलकर देश और जाति की रक्षा करें।

मुझे पूरा विश्वास है कि आप सब और आप जैसे हजारों-लाखों गुरु के बलिदान को सार्थक करने के लिए कटिबद्ध हो जायेंगे और आज से मेरे पास आने वाला हर व्यक्ति अपने साथ एक हथियार लायेगा। लोहा लोहे से ही

कटेगा। काँटा काँटे से ही निकलेगा और विष का उपचार विष ही माना गया है। अब धर्म की रक्षा शास्त्र से नहीं शस्त्र से होगी। आज देश, जाति के बच्चे-बच्चे को एक वीर सिपाही बनना होगा। आज धर्म की रक्षा में, मैं संत परम्परा की गद्दी पर होने पर स्वयं शस्त्र उठाता हूँ और सबको अनुमति और आज्ञा देता हूँ कि वे किसी भी जाति और किसी भी वर्ण के क्यों न हों, क्षात्र धर्म को अंगीकार करें और अत्याचार के विरुद्ध हथियार उठायें।

सभा का उद्‌बोधन करते हुए उन्होंने कहा—यह बात किसी से छिपी हुई नहीं है कि इस समय हिन्दू धर्म पर संकट छाया हुआ है। यवन शासक उसको आमूल नष्ट कर देने पर तुले हैं। तलवार के बल पर शिखा और सूत्र उतारे जा रहे हैं। मंदिर, मठ और शिवालय तोड़े जा रहे हैं। बहू-बेटियों की लाज लूटी जा रही है। हिन्दू राजा स्वार्थ, भोग-विलास और पारस्परिक द्वेष से जर्जर हो रहे हैं। अपना जीवन सुखपूर्वक काटने के लिए न जाने कितने तो यवन शासकों के तलवे चाट रहे हैं। ऐसी अंधकार की स्थिति में हिन्दुओं को अपनी-अपनी बहू-बेटियों और अपने धर्म की रक्षा के लिए अपने पैरों पर खड़ा होना और अपनी भुजाओं पर भरोसा करना होगा।

अब तक के शांतिपूर्ण बलिदान से यह बात सिद्ध हो चुकी है कि आततायी शासक प्रतिहिंसारहित बलिदान को कोई भी महत्त्व नहीं देना चाहते। उनके हृदय में हिन्दुओं का शांतिपूर्ण बलिदान दया के अंकुर नहीं उगा पाया। उनका हृदय ऊसर की तरह नीरस और कठोर है, उसमें किसी प्रकार की सदाशयता और कोमल भावना को कायरता तथा मूर्खता समझा जा रहा है। इसलिए आवश्यक है कि अब 'शठे शाठ्यम समाचरेत्' की नीति अपनाई जाए और तलवार के विरुद्ध धर्म की रक्षा तलवार से की जाए। आज मेरे साथ मिलकर कौन यह प्रतिज्ञा करता है कि जब तक शरीर में एक भी श्वास आता-जाता रहेगा, रक्त की एक भी बूँद बाकी रहेगी तब तक धर्म की रक्षा के लिए युद्ध करते रहेंगे?

गुरु गोबिन्द सिंह का वाक्य पूरा होते ही सभा में सैकड़ों तलवारें एक साथ म्यान से बाहर आकर चमक उठी। गुरु गोबिन्द सिंह ने 'सत्श्री अकाल' के उद्‌घोष के साथ फिर कहा, भाइयो ! आज देश की जनशक्ति जागी है। लेकिन इस जगी हुई जनशक्ति को एक तन, मन से संगठित होकर अजेय बन जाना है और एक नारा, एक निशान और एक नेता को लेकर चलना है। यदि अपने उद्देश्य के प्रति हम सब एक निष्ठावान् रहें तो निश्चय

ही आततायियों को परास्त कर उन्हें ठीक रास्ते पर आने के लिए विवश कर सकेंगे। इस प्रकार देखते ही देखते धर्मवीरों का एक विशाल संगठन बनकर खड़ा हो गया।

श्री गुरुगोबिन्द सिंह जी की तीन पत्नियाँ थीं—1. जीतोजी, 2. सुन्दरजी तथा 3. साहिबकौर जी। इनके चार साहिबजादे थे—1. बाबा अजीत सिंह, 2. बाबा जुझार सिंह, 3. बाबा जोरावर सिंह तथा 4. बाबा फतेहसिंह।

अब संगठन का सूत्रपात कर देने के बाद पश्चात् गोबिन्द सिंह ने उसका मानसिक तथा बौद्धिक विकास करने के लिए शिक्षा प्रचार का कार्य आरम्भ किया। उसके लिए उन्होंने सैकड़ों विद्वानों तथा शिक्षकों को नियुक्त किया। जहाँ उन्होंने हिन्दी, संस्कृत और फारसी आदि अनेक भाषाएँ पढ़ी, वहाँ जनता को भी पढ़ने के लिए प्रेरित किया। उन्होंने सैकड़ों अनुयायियों को विद्याध्ययन के लिए काशी भेजा। जो वहाँ से विद्वान् तथा धर्मज्ञ बनकर आये और जनता में शिक्षण का काम करने लगे।

इसके अतिरिक्त जनता में धार्मिक प्रबोधन तथा उच्चादर्श का जागरण करने के लिए स्थान-स्थान पर रामायण, महाभारत तथा भागवत की कथाएं बिठाई और निरंतर उनका वाचन कराया। प्रशिक्षित पंडित जनता को श्रीराम, श्रीकृष्ण तथा अन्य महापुरुषों के चरित्र की व्याख्या करते हुए जनता को वैसा बनने की प्रेरणा देते। उन्होंने जनता में चंद्रगुप्त, विक्रमादित्य, समुद्रगुप्त, स्कंदगुप्त तथा अशोक जैसे राजाओं के इतिहास का प्रचार किया और हतोत्साह हिन्दू जाति को अपने अतीत गौरव का भान कराया, जिससे जाति को अपने विराट् स्वरूप का ज्ञान हुआ और उसका दैन्य भाव दूर होने लगा।

गुरु गोबिन्द सिंह ने भगवती दुर्गा का विशाल यज्ञ आयोजित किया। जिसमें देश के बड़े-बड़े पंडित तथा संभ्रांत लोगों को आमंत्रित और उन्हें धर्म रक्षा के लिए निर्मित उनके संगठन को सहयोग करने की प्रेरणा दी। इस यज्ञ में लोगों ने गुरु गोबिन्द सिंह को लाखों का धन और हजारों घोड़े, अस्त्र-शस्त्र तथा प्रचूर युद्ध सामग्री भेंट की और आगे भविष्य में भी तन, मन, धन और जन से सहायता करने की प्रतिज्ञा की।

यज्ञ पूरा करने पर गुरु गोबिन्द सिंह ने जन-समूह के सम्मुख आकर कहा—अब आप लोग इस यज्ञ की अधिष्ठात्री देवी, भगवती दुर्गा के दर्शन कर लीजिए, आज जिसकी उपासना करने से ही धर्म और जाति की रक्षा हो

सकती है। इतना कहकर उन्होंने अपनी तलवार निकालकर चमकाई और फिर कहा–''धर्म-रक्षा में उठाई योद्धा की कृपाण ही भगवती दुर्गा का सच्चा स्वरूप होती है। सत् की रक्षा और असत् के विनाश के लिए उठाई हुई तलवार में भगवती की शक्ति और देवी का तेज समाहित हो जाता है। जो वीर पवित्रता के साथ इस शक्ति का प्रयोग करता है, वह इस जीवन में विजयी होता है और उत्सर्ग हो जाने के बाद परमधाम पाता है। इसलिए जब तक धर्म सुरक्षित नहीं हो जाता, देश से अनीति तथा अत्याचार का उन्मूलन नहीं हो जाता तब तक आप सबको और अन्य सभी को इसी साक्षात् तलवार भवानी की उपासना करनी है।'' गुरु गोबिन्द सिंह के इस यज्ञ और उद्घोष ने जन-जन के हृदय में वीरता, उत्साह और साहस का सागर लहरा दिया और सबने अपनी-अपनी कृपाण निकालकर धर्म के नाम पर मर मिटने की प्रतिज्ञा की।

5. पंच प्यारे

धर्माभियान आरम्भ करने से पूर्व बुद्धिमान गुरु ने जन भावना की परख करने के विचार से 13.9.1699 ई० में एक विराट् समारोह किया और उसमें सभी को भाग लेने के लिए आमंत्रित किया। उस उत्सव में हजारों लोग आये। गुरु गोबिन्द सिंह ने उनका आदर, सत्कार किया और उनके भोजन तथा विश्राम-निवास का समुचित प्रबंध किया। प्रमुख सभा के दिन गुरु गोबिन्द सिंह जन समुदाय के सम्मुख नंगी तलवार लिए हुए आये और बोले–

''भाइयो! आज देवी दुर्गा ने बलिदान माँगा है। क्या आप में से कोई ऐसा वीर है, जो देवी की प्रसन्नता के लिए अपना सिर दे सके? सभा में कुछ देर सन्नाटा छाया रहा। गुरु ने फिर कहा–''क्या देवी की माँग पूरी नहीं होगी?'' तभी एक तीस वर्षीय तरुण उठा और बोला–''मैं अपना सिर देवी को भेंट करने को तैयार हूँ।'' यह लाहौर के निवासी भाई दयाराम खत्री थे। गुरु गोबिन्द सिंह उन्हें एक बंद तंबू में ले गये और एक मुहूर्त ही में लोगों ने तंबू के बाहर रक्त की धारा बहते हुए देखी।

गुरु गोबिन्द सिंह फिर हाथ में रक्त से सनी तलवार लेकर आये और बोले–देवी और बलिदान चाहती है। क्या दूसरा कोई व्यक्ति अपना सिर देने को तैयार है? तभी 33 वर्षीय दिल्ली निवासी भाई धर्मदास जाट ने आगे

आकर सिर झुका दिया। गुरु उन्हें भी तंबू में ले गये और रक्त की दूसरी धार बहती दिखाई दी। तीसरी बार गुरु ने आकर फिर वही माँग की। अब की बार 36 वर्षीय मोकहमचंद धोबी आगे आये। गुरु उनको भी तंबू में ले गये और एक बार फिर तंबू के बाहर रक्त की धार बहती दिखलाई दी। इसी प्रकार गुरु ने दो बार और आकर बलिदान की माँग की और दोनों बार क्रम से 37 वर्षीय बीदर-निवासी भाई साहबचंद नाई और 28 वर्षीय जगन्नाथ निवासी भाई हिम्मतराय कुम्हार ने अपना सिर देना स्वीकार किया और उन दोनों की वही दशा हुई, जो प्रथम तीन की हुई थी। अब तो बलिदान भावना से सारा जनसमूह ही उमड पड़ा और हमारा सिर लीजिये, हमारा सिर लीजिये, कहकर अनुरोध करने लगा।

तभी लोगों ने देखा कि वे पाँचों वीर बलिदानी सुंदर वेष-भूषा में तलवार लिए गुरु के साथ सभा मंच पर आ गये। लोगों के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। वास्तविक बात यह थी कि गुरु गोबिन्द सिंह ने उन बलिदानियों के स्थान पर पाँच बकरों को मारकर लोगों के धैर्य तथा दृढ़ता की परीक्षा ली थी। उनका यह प्रयोग सफल हुआ और जन गण की बलिदान भावना अटल तथा अविचल हो गई। उसी समय गुरु गोबिन्द सिंह ने उन पाँचों को 'पंच प्यारे' की उपाधि देकर सिंह पद से उनके नाम विभूषित कर जन समुदाय को निर्देश दिया कि आज से आप लोग आपसी वीर भावना के लिए सिंह कहलायेंगे और अपने उद्देश्य के अनुरूप कृपाण, कड़ा, केश, कंघा और कच्छा ये पांच चिह्न सदैव अपने पास रखेंगे।

उसी समय गुरु गोबिन्द सिंह ने शुद्ध जल से अपना खाँडा धोकर अमृत बनाया और स्वयं पीकर 'पंच-प्यारों' और अन्य सब लोगों को पिलाकर गुरुओं की पवित्र वाणी के साथ उनको खालसा बनाया। इस प्रकार उन्होंने देश, जाति और धर्म की रक्षा के लिए संत और शिष्य परम्परा में शस्त्र-धर्म का सूत्रपात किया और जन-गण का वही संगठन आज तक सिक्ख नाम से चला आ रहा है।

इस प्रकार एक विशाल, सुदृढ़, सुदीक्षित और सशस्त्र संगठन बनाकर गुरु गोबिन्द सिंह ने अनीति और अत्याचार के विरुद्ध युद्ध और संघर्ष करना आरम्भ कर दिया। उनके पास एक दिन एक स्त्री आई और रो-रोकर प्रार्थना

करने लगी कि देहरादून में यवनों के एक दुष्ट दल ने उसके पति को जला डाला है और धन-संपत्ति को लूटकर उसका शील भंग किया है। गुरु गोबिन्द सिंह ने तुरन्त 500 घुड़सवार लिए और स्त्री के साथ जाकर अत्याचारियों को अस्तित्वहीन कर दिया और उसकी सम्पत्ति का प्रबंध एक भद्र व्यक्ति को सौंपकर वापस चले आये।

6. मुगलों से युद्ध

गुरु गोबिन्द सिंह के इस पुण्य अभियान में सहायता करने के लिए आसपास के अनेक राजा आने लगे। उन्होंने उनकी सहायता से लोहागढ़, फतेहगढ़, फूलगढ़ और आनन्दगढ़ नाम के चार किले बनवाये और उनमें बड़े युद्ध की तैयारी करने लगे। गुरु गोबिन्द सिंह के अभ्युदय का समाचार मुगल बादशाह को मिला। उसने मियाँ खाँ, अलफ खाँ और जुलफिकार खाँ नामक तीन सरदारों को एक बड़ी सेना देकर उनके विरुद्ध युद्ध करने के लिए भेजा। उन्होंने आते ही चंवा, नहान और नालागढ़ क्षेत्र में हत्याओं और लूटमार का सिलसिला जारी कर दिया। गुरु गोबिन्द सिंह को इसका समाचार मिला और वे अपनी छोटी-सी सेना लेकर आततायियों पर जा टूटे। धर्म-सेना यवन सेना की तुलना में बहुत ही छोटी और साधनहीन थी। जब भी जाति-धर्म के दीवाने अपने वीर नायक के नेतृत्व में इस वीरता से लड़े कि मुगल सेना के हौंसले पस्त हो गये और वहाँ से भागते ही बना।

मुगलों की इस हार का समाचार लाहौर के सूबेदार दिलावर खाँ को मिला और वह एक बड़ी सेना लेकर युद्ध करने चल दिया। उसने स्वयं तो गुरु गोबिन्द सिंह के पक्षपाती पहाड़ी राजाओं पर आक्रमण किया और अपने लड़के को फौज देकर गुरु गोबिन्द सिंह को परास्त करने के लिए भेजा। लेकिन गुरु गोबिन्द सिंह के तीखे तीरों और उनके सैनिकों की मार वह ज्यादा देर न सह सका और भाग खड़ा हुआ। गुरु गोबिन्द सिंह ने उसका पीछा किया और युद्ध का बहुत अधिक सामान छीन लिया। अपने पुत्र रुस्तम खाँ को हारकर आया देखकर दिलावर खाँ ने बड़ी भारी सेना लेकर गुरु गोबिन्द सिंह पर फिर आक्रमण किया। सिक्ख बहादुर तो मरने-मारने और अत्याचार का मिटा देने का व्रत ही ले चुके थे। वे सत् श्री अकाल का नारा लगाते हुए दिलावर खाँ की सेना से भिड़ गये और देखते ही देखते यवनों को गाजर मूली की तरह काट-काट कर फेंक दिया।

धर्म भावना से बली बने गुरु गोबिन्द सिंह की विजय पर विजय का समाचार सुनकर दिल्ली का सिंहासन हिल उठा। बादशाह ने शहजादे मुअज्जन को विशाल सेना देकर उनके विरुद्ध भेजा। इस समय तक गुरु गोबिन्द सिंह के पास बहुत कम सेना रह गई थी। इसलिए आमने-सामने युद्ध का अवसर न था। आनंदगढ़ का किला चारों ओर से बंद कर लिया गया। मुगल सेना ने दुर्ग को चारों ओर से घेर लिया। घेरे की अवधि बढ़ती गई और किले के भीतर की भोजन सामग्री घटती गई। बाहर से आने की कोई व्यवस्था नहीं हो सकती थी। अस्तु उन्होंने यही ठीक समझा कि किले में भूखों मरने के अपेक्षा क्यों न लड़कर मरा जाए। निदान सिक्ख वीर गुरु के नेतृत्व में हथेली पर जान लेकर निकल पड़े और पूरी शक्ति से मुगलों पर टूट पड़े। धर्म रक्षा की जिज्ञासा और सम्पूर्ण शक्ति से प्रयत्न का जो फल होना चाहिए था वही हुआ। मुगल सेना सिक्ख वीरों की मार न सह सकी और भाग खड़ी हुई। बहुत-सी भोजन तथा युद्ध सामग्री उनके हाथ लगी।

कुछ समय बाद सरहिंद के नवाब ने गुरु गोबिन्द सिंह पर फिर आक्रमण किया और बड़ी भारी सेना द्वारा आनंदगढ़ को घेर लिया। गुरु गोबिन्द सिंह ने कुछ दिन बाद फिर धैर्य से काम लिया, किन्तु अंत में जब किले की खाद्य-सामग्री बिल्कुल ही समाप्त हो गई, तब वे अपने सारे अनुयायियों को लेकर के आनंदपुर से बाहर हो जाने के प्रयत्न में किले से निकल पड़े और मुगल सेना में खड्ग बल पर रास्ता बनाते हुए बढ़ते गये। पूरी शक्ति और निश्चित् विचार से किया हुआ अभियान सफल हुआ और गुरु गोबिन्द सिंह अपने थोड़े से अनुयायियों के साथ आनंदपुर से सतलुज पार कर शत्रुओं की शक्ति से बाहर हो गये। आनंदगढ़ से निकल कर गुरु गोबिन्द सिंह वसूली नामक राज्य में पहुँचे। वसूली एक छोटा-सा राज्य था। वहाँ का राजा दिल्ली के बादशाह के अधीन था। वह राजा राजनैतिक दृष्टि से अधीन अवश्य था, किन्तु उसके विचार तथा भावनायें स्वतंत्र थीं। उसने मन से दिल्ली के बादशाह की अधीनता स्वीकार न की थी। उसे अपने देश, जाति तथा धर्म पर बड़ी आस्था और अभिमान था।

कुछ समय तक वसूली में विश्राम और आगे की योजना बना कर गुरु गोबिन्द सिंह अपनी माता, तीन पत्नियों (जीतो जी, सुन्दरी जी, साहिबकौर

जी) तथा चारों पुत्रों को लेकर चल दिए। स्थान-स्थान पर उपदेश और जनता में संगठन की भावना भरते हुए वे कुरुक्षेत्र आये। कुरुक्षेत्र में गुरुजी का आना सुनकर हजारों की संख्या में लोग उनके दर्शन करने के लिए आने लगे। गुरुजी अपने उपदेशों में देश धर्म और जाति की रक्षा पर ही जोर देते थे। वे लोगों को समझाते कि जिस समय धर्म पर आँच आ रही हो, देश पर संकट छाया हो, उस समय मनुष्य का धर्म उसकी रक्षा करना हो जाता है। इन आपत्तियों को आस्था की परीक्षा ही समझना चाहिए। जब परमात्मा के प्यारे धर्म पर विधर्मी आघात कर रहे होते हैं, उस समय वह परम पिता चुपचाप बैठा हुआ यह देखकर कहता है कि इस समय कौन उसके नाम और उसके धर्म पर बलिदान देने को तैयार हो रहा है? जो बलिदान देने को कटिबद्ध होता है, परमात्मा उसका नाम अपने भक्तों में लिख लिया करता है और जो ऐसे संकटकाल में भी हाथ में माला लिये और माथे पर चंदन लगाये मूर्ति के सम्मुख ध्यान लगाने या जप करने में ही लगे रहते हैं। परमात्मा उनका नाम कायरों और बगुला भक्तों में लिख देता है। देश धर्म पर, अन्य सारी उपासनाएँ छोड़कर उत्सर्ग हो जाने वाले को स्वर्ग ही मिलता है। फिर चाहे उसने पहले कभी पूजा-उपासना या मंत्र जाप किया हो अथवा न किया हो।

जो आपत्ति आज देश और धर्म पर आई हुई है, वह सदा तो रहने वाली नहीं है। इसको मिट ही जाना है। किन्तु ऐसा अवश्य है कि इसके माध्यम से सच्चे आस्तिकों तथा परमात्मा के भक्तों की पहचान अवश्य हो जायेगी। जिसको परमात्मा के नियम (धर्म कहा जाता है) प्यारे नहीं। वह परमात्मा को प्यार कर सकता है–इसमें संदेह है। जिसको परमात्मा का धर्म प्यारा नहीं, उसको परमात्मा का प्यार भी नहीं मिलता। आज हमारी सबकी आस्था की परीक्षा का समय आया हुआ है। आइये, हम सब यथाशक्ति अपना बलिदान देकर उतीर्ण हो। तब न तो यवनों का यह अत्याचार बना रहेगा और न धर्म पर यह संकट। वह परमपिता अपने धर्म की रक्षा का कोई न कोई उपाय कर ही देगा। हम सब कर्तव्यविमुख होकर उसकी कृपा और स्वर्ग से भ्रष्ट कर दिये जायेंगे।

गुरु के प्रेरक वचन सुनकर हजारों की संख्या में लोग उनके सैनिक तथा सहायक बन गये। गुरु गोबिन्द सिंह सूर्य ग्रहण के मेले तक कुरुक्षेत्र में

रुके और वहाँ प्रांत-प्रांत से आए हुए लोगों को यही उपदेश तथा प्रेरणा देते रहे। कुरुक्षेत्र के मेले में आए न जाने कितने नौजवान उनकी धर्म सेना के स्वयं सैनिक और प्रचारक बन गये। इतने लोगों को वेतन तथा भोजन देने के लिए धर्मानुयायियों ने बहुत सा सामान भी गुरु जी को भेंट किया। अनेक लोगों ने अपने उस धन से जो वे वहाँ दान-पुण्य करने के लिए लाये थे, अस्त्र-शस्त्रों का प्रबन्ध कर दिया। लोगों ने उस संकटकाल में उस दान को किसी भी पुण्य से कम नहीं माना और न अपनी तीर्थ यात्रा की सार्थकता पर संदेह किया।

7. आनंदगढ़ का आगमन

इस प्रकार एक विशाल संगठन और देशव्यापी प्रचार करके तथा लोगों को उनका कर्त्तव्य एवं मार्ग बतलाकर गुरु गोबिन्द सिंह चमकौर होते हुए आनंदगढ़ आ गये। गुरु गोबिन्द सिंह का यह संगठन तथा प्रचार जब मुगल बादशाह औरंगजेब के कानों में गया तो उसका अस्तित्व काँप उठा। उसे अपना साम्राज्य तथा सिंहासन जाता हुआ दिखाई देने लगा। उसकी रात की नींद और दिन का चैन हराम हो गया। सुख-चैन अन्यायी तथा अत्याचारी के कर्म में होता ही कहाँ है? उसकी अनीति उसके हृदय में सर्प की तरह बैठी हुई फुंकार किया करती है जिसका भय उसे बाहर अपने चारों ओर दिखलाई देता रहता है। उसे सोते-जागते स्वप्न और परिस्थितियों में अपना विनाश ही झांकता दृष्टिगोचर होता है।

गुरु गोबिन्द सिंह का उद्देश्य उसका राज्य छीनकर अपना राज्य स्थापित करने का नहीं था। उनका ध्येय था, उसका अत्याचार रोककर अपने हिन्दू धर्म की रक्षा करना। वे एक संत थे और संतों के कर्त्तव्य को भली प्रकार जानते थे। जिस धर्म के आधार पर संतत्व प्राप्त होता है और जिस संतत्व के आधार पर सामाजिक सम्मान। उस संतत्व का मुकुट धारण करने वाला कोई संत यदि धर्म पर संकट देखकर चुप बैठा रहता है तो उसे संत नहीं बल्कि पाखंडी ही कहना होगा। इस अपवाद से गुरु गोबिन्द सिंह सावधान थे और इसलिए उन्होंने माला रखकर कृपाण उठाई थी और वैसा करने के लिए ही अपने शिष्यों तथा अनुयायियों को भी प्रेरित किया था। अपने उद्देश्य की पूर्ति

के बाद उन्हें कृपाण रखकर फिर उपासना में ही तल्लीन हो जाना था, उन्हें न औरंगजेब से शत्रुता थी और न उसके राज्य से। उन्हें क्षोभ था तो उसके अनीतिपूर्ण अत्याचार से। एक सच्चा वीतराग संत किसी से शत्रुता क्यों रखेगा? तथापि वह संसार में किसी पर भी होते हुए अत्याचार को नहीं देख सकता। फिर इस समय तो अपने ही धर्म और अपनी ही जाति पर अत्याचार हो रहा था।

अत्याचारों के करने से औरंगजेब का विवेक भ्रष्ट हो चुका था, जहाँ उसे डरना चाहिए था, अपनी अनीति, अपने पाप और अपने क्रूर कर्मों से। वह भयभीत हो रहा था उस संत से जो संसार में किसी से शत्रुता नहीं करता और न किसी को कष्ट या हानि पहुँचाना चाहता है। अपना अत्याचार बंद कर देने से औरंगजेब सर्वथा निःशंक हो सकता था। परन्तु एक बार किया गया पाप सौ बार सिर पर सवार होकर अपना अनुगमन कराया करता है। परन्तु औरंगजेब के सिर तो सैकड़ों पाप सवार थे। उसको भला यह सद्बुद्धि किस प्रकार प्राप्त हो सकती थी? अत्याचारी अनीति द्वारा ही किसी से निस्तार पाने का प्रयत्न किया करता है। अस्तु, औरंगजेब पंजाब के धर्मद्रोही और देशद्रोही पहाड़ी राजाओं, सरहिन्द के नवाब और सीमांत शासकों का दल बनाकर 100000 सेना के साथ, गुरु गोबिन्द सिंह का अस्तित्व मिटाने के लिए आनंदगढ़ पर चढ़ आया।

थोड़े से साथियों के साथ आनंदगढ़ किले में ठहरे हुए गुरु पर एक लाख सैनिकों और सैकड़ों राजाओं तथा सामंतों के साथ चढ़ आना औरंगजेब के भय तथा कायरता का बहुत बड़ा प्रमाण था। किन्तु धर्म का संबल लिए उन वीर पुरुष ने जरा भी चिन्ता न की और आततायियों के विरुद्ध मोर्चा ले लिया। अपने साथियों द्वारा अल्पता की शंका प्रकट करने पर उन्होंने हँसकर कहा कि मनुष्य का सत् साहस स्वयं में ही एक बड़ी सेना है। अपने-अपने हृदयों का साहस संभालो और धर्म की जय बोलकर शत्रुओं से टक्कर लो। सत्य तथा धर्म की ही विजय सदा होती रही है और आज भी होगी और आगे भी होती रहेगी।

एक पखवारे तक अपने नगण्य साथियों के साथ गुरु गोबिन्द सिंह ने

उस आततायी टिड्डी दल से घोर संग्राम किया। एक के बदले मुगलों के सौ-सौ सैनिक और सरदार मारे गये। गुरु गोबिन्द सिंह के धनुष से निकले बाण एक साथ अनेकों को धराशायी कर देते थे। धर्मवीरों ने दिन और रात युद्ध करके आर्य रक्त की विशेषता सिद्ध कर दी। मुगल सेना की एक बड़ी संख्या मारी गई और शेष की हिम्मत के पांव उखड़ने लगे।

तभी दैवयोग से किले की भोजन-सामग्री समाप्त हो गयी। कई दिन तक भूखे-प्यासे रहकर युद्ध चलाया गया। अंत में शेष रहे 40 सैनिकों की हिम्मत छूट गयी। उन्होंने गुरु से कहा कि इस प्रकार भूखों मरने से अच्छा है कि एक साथ संग्राम में कूद पड़ा जाए और अपना बलिदान दे दिया जाए। गुरु गोबिन्द सिंह मुगलों की परिस्थिति समझ चुके थे। उन्होंने साथियों को समझाया कि मुगलों की हिम्मत उखड़ चुकी है। एक-दो दिन और धैर्य से काम लो। शत्रु भागने ही वाला है। किन्तु वे सब सैनिक हिम्मत खो बैठे थे और रण में जाकर प्राण दे देने के लिए हठ करने लगे। हताश होकर गुरु ने कहा—

> **यदि आप लोग इस आड़े समय में मेरी नीति और मेरा साथ छोड़ना ही चाहते हैं तो छोड़ दीजिए। लेकिन मेरे संबंध से त्याग-पत्र देते जाइए, जिससे मैं इस अपवाद से बच सकूँ कि गोबिन्द सिंह ने स्थिति जानते हुए अपने साथियों को निश्चित् मृत्यु के मुख में झोंक दिया। हत्-बुद्धि सैनिकों ने त्याग-पत्र पर हस्ताक्षर कर दिये और अवसर पाकर शत्रु सेना को चीरते हुए आँधी-वेग से निकल गये।**

अब आनंदगढ़ में रहना व्यर्थ समझ कर एक रात गुरु गोबिन्द सिंह भी सहसा दुर्ग के बाहर अपने परिवार के साथ निकल पड़े। मुगलों ने बहुत प्रयत्न किया, परन्तु उस धर्मात्मा की विकट मार से विमुख होकर उनको अथवा उनके परिवार के किसी सदस्य को पकड़ सकने में सफल न हो सके। उस आपत्ति से वे सब निकल तो गये लेकिन बिछुड़ गये। गुरु गोबिन्द सिंह अपने दो बड़े बेटों के साथ एक ओर जा पड़े। उनकी माता अपने दो छोटे पोतों के साथ एक ओर, उनकी पत्नी एक ओर अकेली जा पड़ी। इस प्रकार बिछुड़कर गुरु गोबिन्द सिंह दो पुत्रों के साथ चमकौर जा पहुँचे, उनकी माता दोनों पोतों के साथ अपने रसोइये गंगू के अनुरोध पर उसके घर चली गई और पत्नी किसी प्रकार दिल्ली पहुँचकर एक भक्त के यहाँ रहने लगी।

8. चमकौर दुर्ग

चमकौर दुर्ग में बहुत ही थोड़े से सैनिक थे, साधन-सामग्री भी नहीं के बराबर थी। तथापि गुरु ने हिम्मत से काम लिया और सारे लोगों में पीछा करती आ रही मुगल सेना से जूझने का उत्साह प्रेरित किया। सभी लोग सजग तथा सन्नद्ध होकर शत्रु की प्रतीक्षा करने लगे। कुछ ही समय में विशाल मुगल सेना ने आकर चारों ओर से चमकौर दुर्ग को घेर लिया। सामग्री के अभाव में किले के भीतर रहकर युद्ध चला सकना संभव न था। अस्तु गुरु गोबिन्द सिंह ने कहा कि आप जो थोड़े से लोग हैं, वे किले में इन बच्चों के साथ रहें और जब अवसर पायें तो किसी सुरक्षित दिशा में निकल जाएँ और जब तक यवनों का अत्याचार समाप्त न हो जाए तब तक धर्म-युद्ध चलाते और दूसरों को चलाते रहने की प्रेरणा देते रहें। मैंने आज निश्चय कर लिया है कि अकेले ही जाकर शत्रु की सेना से लोहा लूंगा और धर्म पर बलिदान होकर अकाल पुरुष की गोद में चला जाऊँगा। मुझे स्पष्ट दिखलाई दे रहा है कि समय मेरा बलिदान चाहता है। आशा है उसकी मांग पूरी कर देने पर देश में पुनः धर्म-रक्षा का वही ज्वार आ जायेगा जो पिताजी के बलिदान से आया था।

9. पुत्रों का बलिदान

गुरु गोबिन्द सिंह का निश्चय सुनकर उनके दोनों पुत्र तथा साथी करुण हो उठे। उन्होंने प्रार्थना की—"यदि समय बलिदान ही चाहता है तो पहले हम अपना बलिदान देंगे। आपका सुरक्षित रहना बहुत आवश्यक है। आप सुरक्षित रहेंगे तो न जाने कितने धर्म-रक्षक वीर पैदा कर सकेंगे। आपके सहसा बलि हो जाने से देश के जागरण में निराशा आ जायेगी। यवनों का अन्याय अभी कम नहीं हुआ है। इस समय केवल आप ही देश के आशा केन्द्र बने हुए हैं। अन्याय के विरुद्ध देश में जन जागरण तथा संगठन का काम करने के लिए आपका जीवित रहना अत्यावश्यक है।"

साथियों की प्रार्थना सुनकर गुरु गोबिन्द सिंह सोच में पड़ गये और बोले—फिर भी तो शत्रुओं से इस प्रकार कायरतापूर्वक घिरे रहना भी तो ठीक नहीं, उनकी रण-लिप्सा पूरी करना आवश्यक है। इस समय मेरे सिवाय उनसे लोहा लेने के लिए जाने वाला कौन है?

पिता की बात सुनकर उनके 18 वर्षीय कुमार अजीतसिंह ने हाथ

जोड़कर कहा—"पिताजी मेरे रहते हुए आपको इस प्रकार से निराश नहीं होना चाहिए। युद्ध के लिए मुझे आज्ञा दीजिए और देखिये कि मैं किस प्रकार इन आततायियों के छक्के छुड़ाता हूँ? आप विश्वास रखिये—या तो मैं इस विशाल शत्रु सेना को मार-काटकर विजय प्राप्त करूँगा अथवा अपना बलिदान देकर भारत माता का गौरव और अपना जीवन उज्ज्वल बना लूँगा।"

अजीत सिंह का उत्साह देखकर गुरु गोबिन्द सिंह हर्ष-विभोर हो उठे। वे बोले —"धन्य है पुत्र! जिस देश जाति में तुम जैसे बालक पैदा हों, उसे अधिक दिनों तक कौन सता सकता है? लेकिन तुम भी बहुत छोटे हो। युद्ध में, सो भी निश्चित् मृत्यु के युद्ध में भेजना उचित नहीं लगता। हम सब साथ ही चलकर आज धर्म-रक्षा में अपना बलिदान दे देंगे।"

अजीत सिंह ने पुनः प्रार्थना की कि—"आपका सुरक्षित रहना बहुत आवश्यक है। बहुत-सा कार्य करने के साथ ही आपको मेरे तीन भाइयों का पोषण तथा निर्माण करना है। अपने जीते जी मैं आपको असमय बलि पथ पर नहीं जाने दूँगा। आप मेरी आयु की ओर न देखें। मैं भी उसी देश, उसी आर्य जाति और उन्हीं वीर परम्पराओं की एक कड़ी हूँ, जिसके कि अभिमन्यु थे। आप मोह को छोड़कर युद्ध में जाने की आज्ञा दीजिए और उस सबको दोहरा देने दीजिए जो कुछ दुर्भेद्य चक्रव्यूह में वीर अभिमन्यु ने किया था। गुरु गोबिन्द सिंह ने अपने हाथ से बेटे को कवच और झिलम पहनाया और अपने हाथ से सिरोही देकर कहा—"जा भारत माता के वीर सपूत, जा और रणांगन में अपने वंश, अपने धर्म और अपनी परम्पराओं का परिचय दे।

अजीतसिंह कुछ सिख सैनिकों को लेकर किले से निकला और अकालपुरुष की जय बोलकर बाज की तरह शत्रु सेना पर टूट पड़ा। उस धर्म प्राण बालक ने मुगल सेना को ऐसे काटना आरम्भ किया जैसे किसान पके खेत को काटकर गिरा देते हैं। देखते ही देखते उसने बहुत से मुगल सरदारों को मृत्यु के घाट उतार दिया और समुद्र की तरह उस विशाल सेना को विक्रांत मकर की तरह मथकर फेंक दिया। गुरु गोबिन्द सिंह किले के ऊपर से अपने पुत्र का जौहर देखकर पुलकित हो रहे थे।

जब मुगल सरदारों ने देखा कि यह काल का कराल अंश बालक सेना को मथे डल रहा है, तो उन सैकड़ों ने एक साथ ही चारों ओर से उस वीर बालक को घेर लिया। उस पर एक साथ सैकड़ों तीर, सैकड़ों बरछे, सैकड़ों तलवारें और सैकड़ों गोलियाँ बरसाने लगे। तब भी उस वीर ने संध्या होते-होते हजारों को अपनी तलवार का विषैला पानी पिलाकर सदा के लिए सुला दिया। पश्चिम की ओर जाते भगवान् भुवन भास्कर ने देखा कि उसकी किरण के समान ही प्रज्ज्वलित एक नन्हीं सी ज्योति शिखा उस शत्रु सेना के तमस में पूरे दिन दमकी और अस्त हो गई। गुरु गोबिन्द सिंह और उनके साथियों की आँखों में आँसू और मुख से धन्य-धन्य के शब्द एक साथ निकल पड़े और वे नीचे उतर गये। किन्तु वे आँसू शोक के नहीं, आनंद और गौरव के थे।

दूसरे दिन प्रातः काल गुरु गोबिन्द सिंह सोच रहे थे कि अब क्या किया जाए कि तब तक उनके 16 वर्षीय पुत्र जोरावर सिंह ने आकर प्रार्थना की—"पिताजी, मुझे भी भाई की तरह ही युद्ध में जाने की आज्ञा दीजिए, मैं भी उनका अनुसरण करूँगा। आज का दिन मेरे बलिदान का दिन है।" गुरु गोबिन्द सिंह उसकी भोली सूरत की ओर देखकर चिंता में पड़ गये। तभी बालक ने फिर कहा—"मालूम होता है, आप मुझे इस पुण्य-बलिदान से वंचित कर देने की सोच रहे हैं। यदि आपने ऐसा किया तो मैं यही समझूंगा कि पिता ने न्याय नहीं किया और मेरी वीरता पर अविश्वास रखा। भाई को धर्म पर बलिदान हो जाने का अवसर देकर यदि आप मुझे वंचित रखेंगे तो मेरी दृष्टि में पक्षपाती हो जाएंगे। मेरी प्रार्थना है कि आज, आप मुझे युद्ध में जाने की आज्ञा दें।" पिता ने कहा—परन्तु बेटे तुम अभी 15 वर्ष के ही हो—ऐसी कम आयु में....। पिता का वाक्य पूरा भी न हो पाया कि जोरावर सिंह ने तत्काल कहा—"पिता जी गोरा बादल तो केवल 11 वर्ष के ही थे।" छोटे की बात सुनकर गुरु गोबिन्द सिंह को सहसा हँसी आ गई और उन्होंने यह कहते हुए कि —" जा वीर तू भी जा मुझे क्या अधिकार है कि मैं किसी वीर को उसके अभीष्ट पथ से रोक सकूँ?" कवच और झिलम पहनाकर विदा कर दिया।

नादान बच्चे को युद्ध में आया देखकर अपनी-अपनी प्रवृत्ति के अनुसार बहुतों को हँसी आ गई तो बहुतों की तलवारें शर्म से नीचे हो गई और

बहुत क्रूर आततायी उस पर आक्रमण करने को दौड़ पड़े। युद्ध हुआ और तीन पहर तक शत्रुओं का विनाश करने के बाद वह बालक वीर भी सहसा सैकड़ों सरदारों द्वारा चारों तरफ से घेर लिया गया। उसकी एक भुजा कट गई, एक पैर भी जाता रहा। फिर भी वह घोड़े पर सवार उन अत्याचारी शत्रुओं से लोहा लेता रहा। परन्तु अंत में जब उसके शरीर में एक साथ कई गोलियां लग गई तब वह वीर 'सत् श्री अकाल' के ब्रह्मघोष के साथ गिरकर सदा-सर्वदा के लिए अमर हो गया। गुरु गोबिन्द सिंह ने एक उच्छवास भरा और किले के नीचे उतर गये।

10. चमकौर किले से निकलना

पुत्रों का बलिदान देखकर गुरु गोबिन्द सिंह एक योजना बनाकर आधी रात के घोर अंधकार में अपने शेष साथियों के साथ किले से निकलकर एक ओर चल पड़े, उनके साथी ठीक दूसरी ओर यह कहते हुए दौड़ पड़े—कि गोविन्द सिंह भागा जा रहा है, गोबिन्द सिंह भागा जा रहा है—दौड़ो पकड़ो।'' मुगलों ने समझा कि उनके साथी चिल्ला रहे हैं। सबके सब उसी दिशा में दौड़ पड़े, दूसरी दिशा में जिधर गोबिन्द सिंह जा रहे थे किसी का ध्यान ही न गया। गुरु गोबिन्द सिंह तो इस योजना के अनुसार सुरक्षित निकल गये, परन्तु पता चलने पर वे सिक्ख सैनिक मुगलों के द्वारा टुकड़े-टुकड़े कर दिये गये।

चमकौर से चल कर जिस समय गुरु गोबिन्द सिंह अकेले पैदल ही जंगलों, पहाड़ों, नदी-नालों तथा विपत्तियों को पार करते हुए मालवा की ओर जा रहे थे। उस समय आनंदगढ़ से गुरु के शिष्यत्व से त्यागपत्र देकर गये वे 40 सैनिक अपने-अपने घरों पर पहुँचे। लोगों ने उनका और गुरु गोबिन्द सिंह का समाचार पूछा। जब पता चला कि यह कायर आपत्ति में गुरु का साथ छोड़कर चले आये हैं तो उनके घर की स्त्रियों तक ने उन्हें धिक्कारा और कहा कि इस प्रकार धर्म से मुंह तोड़कर और गुरु का साथ छोड़कर तुम्हें शर्म नहीं आई। जिस मौत से डरकर तुम घर भाग आये हो, यहाँ क्या बच जाओगे? बल्कि यहाँ तो बिस्तर पर पड़कर और भी निकृष्ट मौत मरोगे। यदि धर्म में प्राण दे दिये होते तो निश्चय ही स्वर्ग के अधिकारी बनते। इस प्रकार वे जिधर जाते उन्हें धिक्कार और लांछन का पात्र बनना पड़ता था। उन्हें अपनी स्थिति तथा भूल का आभास हुआ और तुरंत ही गुरु की खोज करते हुए घरों से चल दिये।

इधर विश्वासघाती गंगू रसोइये की अक्ल पर पत्थर पड़ गये। वह पापी अपने घर में आश्रय लिए गुरु गोबिन्द सिंह के पुत्रों तथा माता से विश्वासघात करने की सोचने लगा। उसका मन उनकी उस जेवरात तथा जवाहरात की पिटारी पर ललचा उठा, जो आपत्तिकाल के लिए माताजी अपने साथ ले आई थी। एक दिन उसने वह पेटी गायब ही कर दी और जाहिर कर दिया कि चोरी हो गई परन्तु उसका पापी मन आश्वस्त न हो सका। उसे डर था कि माता ने उसकी चाल समझ ली है। निदान उसने उन्हें समाप्त कर देने की ठानी। किन्तु उसे उन सिंह संतानों और सिंह जननी पर हाथ उठाने की हिम्मत ही न पड़ी। उस लोभी ने सोचा कि यदि उन सबको सरहिंद के सिपाहियों द्वारा गिरफ्तार करा दूं तो यह पेटी तो मेरी हो ही जायेगी, साथ में नवाब की ओर से भी बहुत सा इनाम मिलेगा और एक दिन उसने वैसा ही किया।

नवाब सरहिन्द के पास जाकर उसे गुरु गोबिन्द सिंह की माता और उनके पुत्रों का समाचार दिया। वे सब गिरफ्तार कर लिये गये। परन्तु जब गंगू ने नवाब से इनाम के लिए प्रार्थना की तो उसने यह कहकर उसे जल्लादों के सुपुर्द कर दिया कि इस कौमी गद्दार को भी ले जाकर कुत्ते की मौत मार डालो। जल्लाद उस विश्वासघाती को ले गये और उसके टुकड़े-टुकड़े करके चील-कौवे को खिला दिये। एक देशद्रोही, विश्वासघाती का जो अंत होना चाहिए, वही गंगू रसोइये का हुआ।

मालवा की ओर खुले रास्ते से जाना निरापद नहीं था। स्थान-स्थान पर शत्रु के सैनिक उनकी खोज में घूम रहे थे। इसलिए गुरु गोबिन्द सिंह जंगली रास्तों से झाड़-झंखाड़ों को पार करते हुए और वृक्षों के नीचे रात बिताते हुए यात्रा कर रहे थे। इस यात्रा में उनके पास न घोड़ा था और न कोई साथी। इस आपत्तिपूर्ण एकाकी स्थिति में वे यदा-कदा नियति-चक्र की गति पर विचार करने लगते। वे सोचते—"मनुष्य जीवन में सफलता-असफलता, आशा-निराशा, संपत्ति-विपत्ति का उसी प्रकार साथ है जिस प्रकार दिन और रात का। वह दिन अभी दूर नहीं गया है, जब मेरे साथ हज़ारों लोग थे। मेरे एक संकेत पर लोग प्राण हथेली पर रखकर युद्ध में ऐसे चल देते थे, मानो किसी उत्सव में भाग लेने जा रहे हो। मेरे एक-एक शब्द से लोगों को प्रेरणा

मिलती थी और लोग मेरे बतलाये पथ पर चल पड़ते थे ।

मेरा एक परिवार था, माता, पत्नी और चार बेटे । दो तो मेरे देखते-देखते युद्ध की भेंट चढ़ गये । दो का पता नहीं, कहीं भटक रहे होंगे? कौन जाने, वे जीवित भी होंगे या आततायियों ने उन्हें कहीं पाकर शहीद कर दिया होगा? मेरी माता, जिनकी मैं पूजा किया करता था, न जाने कहाँ ठोकरें खा रही होंगी? पत्नी, जिसका आजीवन साथ निभाने के लिए वचनबद्ध था, नियति चक्र के वेग में पड़कर न जाने कहाँ पहुँची होगी? मैं एकाकी इस जंगल में भटक रहा हूँ ।''

यह दुःखद स्थिति जिसे लोग दुर्भाग्य समझकर दुःखी होने लगते हैं, यथार्थ में व्यक्ति में सहनशीलता, धीरता और कर्तव्यनिष्ठा की परीक्षा-कसौटी हुआ करती है । शिथिल संकल्प के लोग ऐसी दशा में घबराकर निराश हो जाते हैं और प्रायः कर्तव्य से विमुख हो जाते हैं । कर्तव्य बड़ा कठोर होता है, उसके निर्वाह के लिए कभी-कभी व्यक्ति को संसार के सारे संबंधों और सारी संपदाओं से विमुख होना पड़ता है । आज वही कसौटी मेरे सामने उपस्थित है । परन्तु अपनी धर्म निष्ठा के बल पर मुझे पूर्ण विश्वास है कि मैं इस कठोर परीक्षा को दे सकूँगा और उतीर्ण हो जाऊँगा । जो धीर पुरुष धर्म का साथ नहीं छोड़ता, धर्म उसे हर आपत्ति से पार लगा देता है । धर्म में जीवन है, प्राण है, गुरु, बंधु और सखा है । मैं उसे नहीं छोड़ सकता और उस कर्तव्य से भी विमुख नहीं हो सकता । जिसे मैंने ठीक समझकर ग्रहण किया है । इसके लिए चाहे मुझे इससे भी अधिक विपत्तियों में से गुजरना पड़े ।

विचार शृंखला के टूटने पर गुरु गोबिन्द सिंह ने देखा कि वे एक गाँव में आ गये हैं । उन्हें शंका हुई कि कहीं शत्रुओं के हाथ में न पड़ जाऊँ । उस गांव का नाम मछवाड़ा था । वहाँ के दो पठानों ने गुरुजी को देख और पहचान लिया । वे पास आये और प्रणाम करके बोलें—''महाराज, अब आप आगे न जाएँ । चारों ओर मुगलों की सेना पड़ी हुई है । बड़ी तत्परता से आपकी खोज की जा रही है । यद्यपि हम मुसलमान हैं । फिर भी आपके शुभचिन्तक हैं हम जानते हैं कि आप हिन्दू-मुसलमान का प्रश्न लेकर नहीं लड़ रहे हैं । आप अन्याय के विरुद्ध संघर्ष कर रहे हैं । आपने न्याय के लिए अपनी संपत्ति और

परिवार तक को बलिदान कर दिया है, यह बात किसी से छिपी नहीं है। आततायी और अन्यायी, चाहे वह हिन्दू हो या मुसलमान, असामाजिक ही होता है। उसका विरोध होना ही चाहिए और उस विरोध में हर एक व्यक्ति को शामिल होना चाहिए। चाहे वह हिन्दू या मुसलमान। जो न्याय के लिए लड़ रहा हो, अन्याय को मिटाने के लिए संघर्ष कर रहा हो। उसका साथ सबको देना ही चाहिए। हम आपकी और कोई सेवा तो नहीं कर सकते, यहाँ से सुरक्षित अवश्य निकाल देंगे।''

उन पठानों का व्यवहार देखकर गुरु गोबिन्द सिंह सोच उठे। यह एक मुसलमान है, जो आपत्तिग्रस्त अन्य धर्मावलंबी की सहायता करना चाहते हैं। और एक वे मुसलमान हैं, जो निर्बलों तथा निरपराधियों पर अत्याचार करते हैं। अच्छा-बुरा होना हिन्दू या मुसलमान होने पर निर्भर नहीं, बल्कि यह मनुष्यों का अपनी प्रवृत्तियों के अनुसार एक स्वभाव होता है। उन पठानों ने गुरुजी को मुसलमान-मौलवियों के वेश में अपने कंधों पर चढ़ा कर खतरे से बाहर निकाल दिया। गुरु गोबिन्द सिंह धनाली ग्राम होते हुए रायगढ़ पहुँच गये। रायगढ़ में गुरु का आगमन सुनकर फिर लोग अस्त्र-शस्त्र ले-लेकर उनके पास एकत्र होने और युद्ध की तैयारी करने लगे।

जिस समय गुरु गोबिन्द सिंह रायगढ़ में पुनः युद्ध की तैयारी कर रहे थे, उस समय नवाब सरहिंद उनके दोनों नन्हें बालकों को मुसलमान बनाने का प्रयत्न कर रहा था। उसने उन्हें अपने सामने पेश कराया और कहा—तुम दोनों बड़े प्यारे बच्चे हो। माना कि तुम मुसलमानों के शत्रु गोबिन्द सिंह के लड़के हो, तब भी हम तुम्हारी छोटी आयु को देखकर माफ कर देंगे। तुम दोनों मुसलमान हो जाओ। तुम्हारे विवाह राजकुमारियों से करवा देंगे और जागीर बख्स देंगे। सुख-चैन से जीवन काटना।

उन 7 और 9 वर्ष के बच्चों ने तुरन्त उत्तर दिया कि—''नवाब, ऐसी बातें मुंह से मत निकालो। कहीं अपना धर्म छोड़कर दूसरों का धर्म ग्रहण किया जाता है। धर्म के मूल्य पर सुख-चैन की कामना करने वाले कायर नरक के कीड़े बनते हैं। जिसके कुल ने अपने धर्म की रक्षा में सर्वस्व बलिदान कर दिया है, वे मुसलमान हो जाएंगे, ऐसी आशा आपने किस भ्रम से बना ली?''

नवाब ने उन्हें धमकाया, मरवा डालने की धमकी दी, परन्तु वे दोनों अपने धर्म पर पर्वत की तरह अटल बने रहे। उनकी निर्भीकता, दृढ़ता और धर्मनिष्ठा देखकर नवाब सरहिंद जल-भुन कर खाक हो गया। उसने दरबार को संबोधित करके कहा कि, आप लोग बतायें कि इन काफिर सपोलों को क्या दंड दिया जाए? दरबार के हर विवेकशील व्यक्ति ने कहा कि यह तो अभी बच्चे हैं, निरपराध हैं, इन्हें कोई भी दंड न दिया जाना चाहिए। ये रहम और मोहब्बत के हकदार हैं। इन्हें माफ किया जाए और रिहा कर दिया जाए। परन्तु धर्मांध नवाब को उनकी राय पसंद न आई। वह तो उन्हें मुसलमान बनाने या प्राण ले लेने पर उतारू था। उसने फिर उनसे मुसलमान हो जाने के लिए कहा, जब वे किसी प्रकार न माने तो उसने उन्हें किले की दीवार में चिनवा देने का हुक्म दे दिया।

उन वीर बालकों की दीवार में चिनवाई आरम्भ हो गई। नवाब सरहिंद खड़ा-खड़ा यह पाप देखता रहा। बीच में उसने फिर कहा—"लड़को! अगर अब भी तुम मुसलमान होना स्वीकार कर लो तो सीने तक आई यह दीवार अब भी तोड़ी जा सकती है। नहीं तो यह पूरी कर दी जाएगी और तुम उसमें दबकर मर जाओगे।" बच्चों ने मुस्कराते हुए फिर उत्तर दिया, नवाब जुबान बंद करो, इस प्रकार धर्म पर बलिदान हो जाने से बढ़कर जिन्दगी का और क्या महत्व हो सकता है? दीवार आगे बढ़ी और छोटे भाई की आँखों तक जा पहुँची। यह देखकर बड़े भाई जुझारसिंह की आँखों में आँसू आ गए। नवाब ने समझा शायद बालकों का धैर्य और साहस जाता रहा है। वे मौत को मुख के पास देखकर डर गये।

वह बोला अब भी समय है। यदि मुसलमान हो जाओ तो अपने प्राण बचा सकते हो। बड़े भाई ने तुरन्त उत्तर दिया, "जीवन तो नश्वर है। उसे एक दिन नष्ट ही होना है, उसके लालच में आकर धर्म से च्युत होने का क्या अर्थ? तब तुम्हारे आँखों में आँसू क्यों? नवाब ने फिर पूछा। जुझारसिंह ने कहा—"संसार में पहले मैं आया। देश-धर्म पर पहले मुझे बलिदान होना चाहिए। किन्तु देख रहा हूँ कि यह गौरव मेरा छोटा भाई लिए जा रहा है। इसी दुःख से मेरी आँखें गीली हो गई है।" बच्चे की बात सुनकर सभी के मस्तक

आदर से नत हो गये। परन्तु नवाब सरहिंद तो अपने सिर कलंक लेना ही चाहता था। उसने अंतिम ईंटें रखने का आदेश दे दिया। दीवार पूरी हो गई और गुरु गोबिन्द सिंह के वे दोनों नौनिहाल सदा-सर्वदा के लिए उसमें समाहित हो गये। परन्तु तब भी चलते समय लोग दूर तक उस बलिसमाधि से निकलती हुई 'ओ३म्-ओ३म्' की प्रणव प्रतिध्वनि सुनते ही रहे।

चमकौर के किले में गुरु गोबिन्द सिंह जी को समाचार मिला कि उनके दोनों छोटे पुत्र दीवार में जिन्दा चिनवा दिये गये हैं और उनके दुःख में उनकी माता व पत्नी ने प्राण त्याग दिये हैं। इस हृदय विदारक समाचार को सुनकर भी गुरुजी व्याकुल नहीं हुए अपितु रोते हुए साथियों को कहा–

भाइयो! आप लोग समाचार पाकर रो रहे हैं जिसको सुनकर हर्ष विह्वल हो उठना चाहिये था। यह तो खुशी की बात है कि बच्चों ने प्राण दे दिये लेकिन धर्म नहीं दिया। दुःख की बात तो तब होती जब वे भय और लोभ में आकर अपना धर्म दे देते। यदि आप लोग जीवन के सार की ओर न देखकर नश्वर शरीरों पर शोक कर रहे हो तो भी ठीक नहीं है।

गुरु गोबिन्द सिंह जी ने आगे कहा–

बस इसी तरह मानव शरीरों को समझ लो, इन्हीं रेखाओं की तरह बनते और मिटते रहते हैं। जो जन्म लेता है वह एक दिन मरता भी है। एक दिन उन दोनों कुमारों ने भी अस्तित्व पाया और उन्हीं की तरह मिट गये। उन्होंने धर्म पर अपना बलिदान दे दिया। इसलिये उनकी मृत्यु बधाई का विषय है, दुःख अथवा शोक का नहीं।

गुरु गोबिन्द सिंह जी का सार वचन सुनकर सबको ज्ञान हो गया और सभी सत् श्री अकाल के घोष के साथ हर्षित हो उठे।

10.साहित्य सृजन

गुरु गोबिन्द सिंह जी एक महान् साहित्यकार थे। कहते हैं उनके दरबार में 52 कवि थे। उन्होंने निम्नलिखित मुख्य रचनायें रची थी जोकि दशम ग्रंथ में संग्रहित हैं–

(1) चंडी चरित्र, (2) अकाल स्तुति, (3) ज्ञानप्रबोध, (4) चौबीस अवतार, (5) शास्त्र नाममाला, (6) त्रियाचरित्र, (7) विचित्र नाटक,

(8) चित्रोपाख्यान, (9) शब्द हजारे, (10) सवैये, (11) चंडी-दी-वार (12) शब्द, (13) जापजा, (14) ख्याल, (15) जफरनामा, (16) हिकायतें आदि ।

आपकी रचना चण्डी-दी-वार पंजाबी में और जफरनामा और हिकायतें फारसी में है । शेष सब रचनाएं हिन्दी में है । जरा विचित्र नाटक का एक अधोलिखित उद्धरण देखिये—

जो हमको परमेसर उचरि है ।

ते सभ नरक कुंड माहि परि है ।।

मो को दास तवन को जानो ।

या भेद न रच पछानो ।।

मैं हौं परम पुरख को दासा ।

देखन आयो जगत तमासा ।। —6.32.33

संसार के जो व्यक्ति मुझे परमेश्वर कहते हैं वे सभी घोर नरक के अधिकारी होंगे । इस बात को रत्ती भर भी संदेह में न रखकर मुझे तो केवल उस परमेश्वर का दास समझो । मैं परमेश्वर का दास हूँ । उसकी इच्छा से ही जग-जीवन का तमाशा देखने आया हूँ ।

इसके अतिरिक्त आपने अपने पिता श्री गुरु तेग बहादुर जी की वाणी श्रीगुरुग्रंथसाहिब में महला-9 से अंकित की और केवल अपना एक निम्नलिखित श्लोक ही इस ग्रंथ में अंकित किया—

बलु होआ बंधन छुटे सभु किछु होत उपाइ ।

नानक सभु किछु तुमरे हाथ मैं तुम हो होत सहाइ ।।

—महला 10, श्लोक 54

जब प्रभु की कृपा हुई, शक्ति जागृत हो गई । बंधन टूट गये मुक्ति के सभी साधन सम्भव हो गये । सब कुछ प्रभु के हाथ में है । हे प्रभु ! तुम ही मेरे सहायक हो ।

11. महाप्रस्थान

रायकोट से संगठन करते हुए जिस समय गुरु गोबिन्द सिंह नादेड़ पहुँचे, उस समय उन्हें पता चला कि यहाँ पर एक बड़ा वीर वैरागी रहता है ।

किन्तु कई कारणों से उसे वैराग्य हो गया और वह तरुण अवस्था में ही संन्यास लेकर वनवासी हो गया है। गुरु जी तुरंत उसके पास पहुँचे और बोले—

> **वैरागी, क्या तुम्हें देश-धर्म पर छाई हुई आपत्ति का आभास नहीं होता? संत का कर्तव्य तो पीड़ितों का कष्ट दूर करना है। पर तुम ऐसे संत हो कि जिस समय देश-धर्म को तुम्हारी सेवाओं की आवश्यकता है, उस समय तुम एकांत सेवन करते हुए वन में बैठे हुए हो। केवल भजन से ही किसी को मुक्ति नहीं मिलती। इसके लिए संसार में सत्कर्म भी करने होते हैं। जिस समय समाज पर आपत्ति के बादल बरस रहे हों, उस समय केवल अपनी मुक्ति के लिए समाज से दूर रहकर प्रयत्न करना घोर स्वार्थ है। इसका प्रतिपादन करने से मनुष्य को मुक्ति नहीं मिल सकती। आज की सच्ची साधना देश-धर्म के लिए लड़ते-लड़ते मर जाना है। इसलिए उठो और देश-धर्म के प्रति अपने वास्तविक कर्तव्य का पालन करो।**

गुरु गोबिन्द सिंह के प्रेरणा भरे वचन सुनकर वह वैरागी, जो बंदा वैरागी के नाम से प्रसिद्ध था—उठा और गुरु से शस्त्र लेकर पंजाब की ओर चल दिया। पंजाब में उसने धर्म सेना का संगठन किया और पंजाब में धर्मयुद्ध की दुंदुभी बजा दी। बड़ा भयंकर युद्ध हुआ। इस युद्ध में बंदा और उसके साथियों की विजय हुई। सरहिंद का नवाब और सेना मारी गई, बंदा ने पंजाब का पूरा प्रदेश जीतकर उस पर हिन्दू-धर्म का झंडा फहरा दिया और इस प्रकार एक वीर ने अपने साथियों के सहयोग से सदियों से चला आ रहा मुसलमान शासन पंजाब से उखाड़ फेंका।

गुरु गोबिन्द सिंह को जब इस विजय का पता लगा तो वे बड़े प्रसन्न हुए और लोगों से कहने लगे—"अब लोगों को और भी संगठित तथा सावधान हो जाना चाहिए, क्योंकि सरहिंद की पराजय से खिन्न होकर दिल्ली का बादशाह और पंजाब के आस-पास के यवन शासक मिलकर पंजाब में अंकुरित स्वतंत्रता के पौधे को उखाड़ फेंकने का प्रयत्न करेंगे।

गुरु गोबिन्द सिंह का अनुमान ठीक निकला। दिल्ली के बादशाह औरंगजेब ने तीस-चालीस हज़ार सेना और उसके नायक अब्दुल समंद खां को पंजाब में संगठन तथा वीर बंदा वैरागी को मिटा डालने के लिए भेजा। अब्दुल समंद ने पंजाब के आस-पास के यवन शासकों को संगठित किया और

कई लाख सेना लेकर बंदा वैरागी पर आक्रमण कर दिया । बंदा वैरागी ने भी वहाँ के हिन्दू राजाओं को संगठित किया, परन्तु वे तो विलास की नालियों में पड़े देश-धर्म को भूले हुए थे । बंदा वैरागी उस विशाल भववाहिनी में घिर गया । उसकी सेना तथा खाद्य सामग्री कम हो गई । भूखों मरने की स्थिति हो गई । विवश होकर उसने अपने शेष साथियों को लेकर शत्रु से जूझ जाना ही ठीक समझा । निदान वह अपने बचे हुये थोड़े से साथियों को लेकर यवनों की विशाल सेना में धंस गया और ऐसा भयंकर युद्ध किया कि उनके छक्के छूट गये, किन्तु अंत में एक-एक साथी के मर जाने पर वह भी बंदी हो गया । बंदा वैरागी को गिरफ्तार करके दिल्ली लाया गया । औरंगजेब ने उनके सामने मुसलमान हो जाने का प्रस्ताव रखा । उसने उसके प्रस्ताव पर घृणा प्रकट करते हुए कहा–

नासमझ बादशाह ! तुम प्राणों का भय दिखलाकर एक धर्मवीर को उसके धर्म से विचलित नहीं कर सकते ।

औरंगजेब ने बंदा वैरागी के शरीर की बोटी-बोटी गर्म चिमटों से बाहर निकलवा ली । यहाँ तक कि उसकी हड्डियों का ढाँचा मात्र शेष रह गया । किन्तु वह अपने धर्म से न तो विचलित हुआ और न उसने आह भरी । अंत में वह हँसता-हँसता 'सत् श्री अकाल' का घोष करते हुए भूमि पर गिरकर प्रभु को प्यारा हो गया ।

गुरु गोबिन्द सिंह उन दिनों गोदावरी के तट पर नगीना नाम का एक घाट बनवा रहे थे । दिन भर उस काम में व्यस्त रहकर वे सायंकाल प्रार्थना कराते और लोगों को संगठन तथा बलिदान का उपदेश दिया करते थे । उन दिनों उनके पास अनेक मुसलमान शिष्य भी रहते थे । किन्तु उन मुसलमान भक्तों में एक शत्रु भी छिपा हुआ था उसका नाम अताउल्ला खाँ था । उसका पिता पैदे खाँ एक युद्ध में गुरुजी के हाथ से मारा गया था । उसके अनाथ पुत्र को गुरुजी ने आश्रय में रखकर पाल लिया था । किन्तु उनकी यही दया और शत्रु के पुत्र के साथ की गई मानवता उनके मृत्यु का कारण बन गई ।

दुष्ट अताउल्ला खाँ हर समय इस घात में रहता था कि कब गुरु जी को अकेले में असावधान पाएं और मार डालें । निदान एक दिन उसने पलंग पर सोते हुए गुरुजी की काँख में छुरा घोप दिया । गुरुजी तत्काल सजग होकर उठ

बैठे और वही कटार भागते हुए विश्वासघाती को फेंककर मारी । वह कटार उसकी पीठ में घुस गई । अताउल्ला खाँ तुरंत गिरकर मर गया । गुरु गोबिन्द सिंह की कमर का घाव बड़ा गहरा था । किन्तु तत्काल उसका उपचार कर देने से उनके प्राण बच गए । घाव धीरे-धीरे ठीक होने लगा । परन्तु वे चुपचाप कहाँ बैठने वाले थे । एक दिन जब वे एक धनुष की डोर चढ़ा रहे थे तो उनका घाव सहसा खुल गया और उससे रक्त बहने लगा । उस घाव का काफी इलाज किया गया । लेकिन घाव फिर ठीक नहीं हो सका । उनकी तकलीफ बढ़ती ही चली गई । उस समय उनकी आयु 42 वर्ष की थी । उन्हें अनुमान हो गया कि अब वे नहीं बचेंगे । उनका अन्तिम समय आ गया है ।

12. श्रीगुरुग्रंथ साहिब

गुरु गोबिन्द सिंह ने सिक्ख संगत को बुलाया और 'श्रीगुरुग्रंथसाहिब' लाने को कहा । 'श्रीगुरुग्रंथसाहिब' के आने पर उन्होंने अपने खालसा पंथ के लोगों को आदेश दिया–

> **सन्तो ! मेरे बाद अब कोई जीवित व्यक्ति इस गुरु गद्दी पर विराजमान नहीं होगा । इस गुरु गद्दी पर 'श्रीगुरुग्रंथसाहिब' विराजमान रहेंगे । अब आप लोग इन्हीं से अपना मार्गदर्शन कराना और इन्हीं से आदेश प्राप्त कराना ।**

इस प्रकार 4.10.1708 ई० को गुरु गोबिन्द सिंह ने श्री गुरुग्रंथसाहिब को गुरु गद्दी बख्शी । उन्होंने श्रीगुरुग्रंथसाहिब के आगे पांच पैसे और एक नारियल रखकर सिर नवाया और सारे सिखों को आगाह किया कि आज के पश्चात् श्रीगुरुग्रंथसाहिब को ही अपना गुरु माने । इसके पश्चात् इस ग्रंथ का नाम श्रीगुरुग्रंथसाहिब रखा गया । श्री गुरु गोबिन्द सिंह ने आदेश दिया–

> **आगिआ भई अकाल की तबै चलायो पंथ ।**
> **सब सिक्खन को हुकम है, गुरु मानीओ ग्रंथ । ।**
> **गुरु ग्रंथ को मानीओ प्रगट गरां की देह ।**
> **जो प्रभु को मिलनो चहे खोज सबद मैं लैह । ।**

–पंथ प्रकाश, ज्ञानी ज्ञानसिंह, पृ० 353

इस प्रकार श्री गुरु गोबिन्द सिंह खालसा पंथ को अंतिम आदेश देकर वे 7.10.1708 को नादेड़ साहिब (महाराष्ट्र) में ज्योतिजोत समा गये ।

अन्ततः ऊपरलिखित निष्कर्ष एवं निचोड़ के पश्चात् यह कहना सर्वथा उचित होगा कि श्री गुरु गोबिन्द सिंह ने धर्म की रक्षा के लिए जितनी कुर्बानी

की है विश्व इतिहास में शायद किसी व्यक्ति ने की हो। यहाँ तक उन्होंने अपने परदादा गुरु अर्जन देव, अपने पिता गुरु तेग बहादुर स्वयं को और अपने चारों पुत्रों को धर्म और राष्ट्र के लिए समर्पित कर दिया। वस्तुतः धन्य-धन्य थे वे माता-पिता और धन्य-धन्य है वह पटना की भूमि जहाँ पर इस महामानव का प्रादुर्भाव हुआ। अतः उन्हीं के विषय में साधु टी०एल० वासवानी लिखते हैं—

उनमें अतीत में अवतरित सभी ईश्वर पुत्रों के गुण विद्यमान थे। गुरु नानक देव जी महाराज की विनम्रता, ईसामसीह की तरस भरी मासूमियत, महात्मा बुद्ध का आत्म ज्ञान, श्रीकृष्ण का सूर्यव्रत प्रताप, श्री राम जैसी मर्यादा तथा शहंशाहों वाली शान थी।

अतः अल्लायार खां ने पूर्ण विश्वास से कहा है—

इंसाफ करे जमाना तो मुझको यकी है।

कहदे कि गुरु गोबिन्द का सानी नहीं है।।

13. गुरु गोबिन्द सिंह की वाणी :

देह शिवा! वर मोहि इहै शुभ कर्मन ते कबहुँ न टरौं।

न डरौं अरि सों जब जाइ लरौं निशचै कर आपुनि जीत करौं।।

अरु सिक्ख हौं आपने ही मन को, इह लालच हौं गुन तौ उचरौं।

जब आव की औध निदान बनै अति ही रण मैं तब जूझ मरौं।।

हे भगवती दुर्गे! मुझे यही वरदान दीजिए कि मैं शुभ कर्मों से कभी न टलूं। जब मैं शत्रु से जा कर युद्ध करूँ तो मैं भयभीत न होऊँ और निश्चित् रूप से अपनी जीत करूँ। मैं तो तुम्हारा शिष्य हूँ। अतः अपने ही मन के लालच के कारण मैं तेरे गुणों का गान करता हूँ। जब मेरी आयु की अवधि अन्त बन जाए तो मैं चाहता हूँ कि बड़े भारी युद्ध में लड़ता हुआ प्राण त्याग दूँ।

लेखक द्वारा प्रकाशित एवं निःशुल्क वितरित पुस्तकों की सूची :–

1. रामचरितमानससार
2. गीतासार
3. उपनिषद्सार
4. सत्यार्थप्रकाशसार
5. भक्ति
6. सुखीजीवन
7. आत्मबोध
8. वेदवाणी
9. वैदिकसाहित्य
10. अमृतवाणी
11. महर्षि दयानंद
12. स्वामी विवेकानंद
13. शरणागति
14. वैदिक रामायण
15. क्या आप जानते हैं ?
16. शेंर-ओ-शायरी

लेखक द्वारा अप्रकाशित पुस्तकों की सूची :–

1. वैदिक उपनिषद्वाणी
2. वैदिक दर्शनवाणी
3. वैदिक महाभारत
4. वैदिक गीता
5. अमर धर्मग्रंथ
6. अमर नीतिग्रंथ
7. पुराणपरिचय
8. ईश्वरसिद्धि
9. राष्ट्रभाषा हिन्दी
10. मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम
11. महावीर हनुमान
12. योगिराज श्रीकृष्ण
13. आदिशंकराचार्य
14. आचार्य चाणक्य
15. दस गुरु
16. आर्यसमाज के महामानव
17. स्वामी रामतीर्थ
18. संस्कार
19. गीतांजलि
20. आर्यसमाज
21. ओ३म्
22. गायत्रीरहस्य
23. ज्ञानामृत
24. यज्ञ
25. संत
26. संतवाणी
27. सामान्य हिन्दी (भाग I-II)
(सब कक्षाओं के लिये)
28. **Great Thoughts**
29. **General English (Part I to V)**
(For All Classes)